'वर्धमान रूपायन' की रचना भगवान महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण महोत्सव वर्ष की एक विशेष साहित्यिक, रंगमंचीय और नयनाभिराम उपलब्धि है। कुशल साहित्य-शिल्पी श्रीमती कुन्था जैन को ही यह श्रेय है कि युगीन परिस्थितियों को सजीव रूप देकर भगवान महावीर के जीवन की दिव्यता, उनके संयम और तप की दुर्धर्षता, ज्ञान की वैज्ञानिकता तथा उपदेशों की कल्याणकारी चिरन्तनता को कलात्मक शैली में चित्रित किया है।

इस संग्रह में लेखिका की विभिन्न शैली-शिल्पों में रचित तीन कृतियां हैं 'दिव्यध्वनि-छंद' (संगीत-नृत्य नाटिका), 'वीतराग' (मंच-नाटक) और 'मानस्तम्भ' (मंच योग्य रेडियो-रूपक)।

'दिव्यध्वनि-छंद' की कथा भोगभूमि के आदिकालीन जीवन, और प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभनाथ द्वारा प्रणीत सामाजिक व्यवस्थता को स्पर्श करती हुई तीर्थंकर महावीर के जीवन पर केन्द्रित होती है। इसमें जन-जीवन की सहज सरसता, राजसी वैभव की प्रदीप्ति, गणतन्त्रीय और साम्राज्यवादी शक्तियों की टकराहट, तथा हिंसा, स्वार्थ और वैषम्य की सामाजिक विद्रूपता का निराकरण करने वाली भगवान की अध्यात्मिक वाणी की गूंज-अनुगूंज है। संगीत-नृत्य, प्रकाश और छायाके चमत्कारी संयोजन का समावेश इस रचना में किया गया है।

दूसरी रचना 'वीतराग' सरल और रोचक नाटक है जिसमें आज के पात्रों के सामने भगवान महावीर की जीवन-गाथा अपनी समग्र पवित्रता और तत्कालीन दार्शनिक परिवेश के साथ रूपायित हो जाती है।

वर्धमान रूपायन

(तीन नाट्य-रूपक)

कुन्था जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-३९२
सम्पादक एवं नियोजक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
जगदीश

Lokodaya Series : Title No 392
VARDHAMAAN ROOPAAYAN
(*Plays*)
KUNTHA JAIN
First Edition : *1975*
Price : Rs. 10.00

B/45-47 Connaught Place
NEW DELHI-110001

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/४५-४७ कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१
प्रथम संस्करण : १९७५
मूल्य : १०.०० रुपये

परिच्छद पर चित्र का परिचय

जन्म-मंगल के समय इन्द्र-इन्द्राणी तीर्थंकर की जननी की सेवा में।
[महापुराण की सचित्र प्रति से, १५वीं शती]

सेवा में जननी की नियुक्त देवी अप्सराएँ
मुग्ध मन कलाचतुर पूछती प्रहेलिकाएँ
(पृष्ठ २४ पर की पूरक पंक्ति,

फूल-सी पली जहाँ
ज्ञानामृत सिंची
उसी वट-छाँह में
अर्पित यह अन्जुरी

अपनी बात

भगवान महावीर का २५००वाँ निर्वाण पर्व, आध्यात्मिक समृद्धि और वीतराग आनन्द का उमड़ता झरना बनकर जीवन को प्रक्षालित करेगा और 'डूब कर तिरने' की अनुभूति का आभास-रस देगा, इसकी प्रतीति 'दिव्यध्वनि-छन्द', 'वीतराग' और 'मानस्तम्भ' की रचना-अवधि में हुई। संसार की विविध व्यस्तताओं और समसामयिक दबावों से घिरे व्यक्ति के लिए कितना महत् सान्त्वनादायक वरदान !

भगवान के जीवन और उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि से उत्पन्न जीवन-दर्शन के विशेष अध्ययन की प्रेरणा मन में स्वतः स्फूर्त हुई।। मूल में अन्य कारण भी अवश्य रहे—जैन-कुल में उत्पन्न होने की सहज संस्कारगत श्रद्धा, परम्परागत अध्ययन के आधार पर इस श्रद्धा की परिपुष्टि और परिपुष्ट श्रद्धा के सम्प्रेषण की आंतरिक अनिवार्यता। शिक्षा-दीक्षा और परिवेश की आधुनिकता ने जीवन-दर्शन को नये आयाम दिये हैं। आधुनिक दृष्टि का आग्रह होता है कि भावना के उच्छ्वास को संयमित करके उसे उस तर्क का आधार दिया जाये जो आधुनिक जीवन की विषमताओं और निरीहताओं के बीच किसी स्थायी अवलम्ब का अन्वेषी है। महावीर के युग ने, इतिहास ने और उनके तत्त्व-चिन्तन ने समसामयिक समस्याओं के मूल को समझने की भूमिका दी और समाधान के संकेत भी दिये। इस सारी अनुभूति को, इस अनुभूति के आह्लाद को, किस प्रकार सम्प्रेषित किया जाय, यह प्रश्न मन में उमड़-घुमड़ रहा था। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा मंच प्रस्तुतीकरण और नृत्य-काव्य-रूपक द्वारा रोचक संप्रेषण की सम्भावनाएँ चित्त में उपज रही थीं, किन्तु इन माध्यमों को अपनाना और इनके लिए लिखना कितना कठिन है, यह मैं अनुभव से जानती रही हूँ।

हुआ यह कि अनुरोध और आग्रह आये कि इन विधाओं में मैं भगवान महावीर पर रचनाएँ दूं। मुझे सारे संभ्रम दूर करने पड़े। स्वयं को इस दृष्टि से अनुशासित करने की आवश्यकता अनुभव हुई कि भगवान महावीर के प्रति संस्कारी श्रद्धा और विनय-भावना, उन दर्शकों और पाठकों के लिए भारी न पड़े जो महावीर की मानवीय शक्ति के चरम विकास और उनके उपदेश-दर्शन को रुचिकर कलात्मक माध्यम से ग्रहण करना चाहते हैं, और जिनकी माँग यह भी है कि श्रद्धा-भक्ति से निर्मित, शाश्वत बोध पर आधारित वे अतिशयोक्तियाँ एवं चमत्कारी घटनाएँ जो तीर्थंकरत्व-पद से विभूषित व्यक्तियों के जीवन से जुड़ी हैं, उनका

निर्देशन इस प्रकार हो कि वे समकालीन बोध के प्रकाश में 'सम्भव' की परिधि में स्थान पा सकें। सचेतन स्तर पर यह सब निवाह कर लिखना, कल्पना की उड़ान और भावना के सरल प्रवाह को बाँधना है। इसलिए ये रचनाएँ अपनी खूबी और खामियों सहित, यदि पठनीय और मंचीय दृष्टि से सफल हुई तो समझूंगी कि भगवान के चरणों में प्रेषित श्रद्धांजलि स्वीकृत हुई।

रेडियो-नाटक लिखने का स्नेह-भरा अनुरोध स्वर्गीया बहिन रजनी पनिकर ने किया था। वे अकस्मात् हमारे बीच से चली गयीं। इस मार्मिक आघात को झेलने में 'मानस्तम्भ' की रचना ने हार्दिक शान्ति और सान्त्वना प्रदान की।

एक स्निग्ध-ज्योति जो मानस और हृदय को सदा प्रफुल्ल आलोक से भरती रही है, वह है मेरे अपने पिताजी स्वर्गीय पण्डित फतहचन्दजी की, जिन्हें साहित्य के काव्य-रूप से अत्यधिक प्रेम था, जो धर्म-दर्शन के गूढ़ तत्त्वों के तल-स्पर्शी ज्ञाता थे और, सबसे बड़ी बात यह कि, वह तार्किक और बुद्धिवादी पक्ष को कथा की रोचक शैली से जोड़कर सरल हृदय को श्रद्धावनत बनाने की अद्‌भुत क्षमता रखते थे। उन्होंने अपनी युवावस्था में अँगरेजों के शासन-काल में शिमले के मॉल रोड पर स्थित थियेटर में शौक़िया तौर पर पहली बार न्यामत सिंह रचित हिन्दी नाटक मैना सुन्दरी और तिलकसुन्दरी, सन् १९२७-२८ में प्रस्तुत किये थे और नारी पात्रों के सम्बन्ध में उस समय की परम्परा के अनुसार स्वयं नायिकाओं की भूमिका में आये थे। उनके साथ-ही-साथ अपनी माँ का सौम्य सुन्दर चेहरा आँखों में उतर आता है, जो आज भी गद्‌गद् कण्ठ और भाव-विह्वल मुद्रा से भगवान के दर्शन, स्तुति और पूजा-पाठ में अपने व्यक्तित्व को समोये रखती हैं और गृहस्थी के कामों से भी पूरी तरह जुड़ी हुई हैं।

ममता भरा सखी-भाव इन कृतियों की सम्पूर्णता पर मुझे अधिक सजीव और प्राणमय हर्ष से भर सकता।

o o o

अब कुछ शब्द जिनका सीधा सम्बन्ध नाटक की विधा और चरित्र-चित्रण से है :

विधा के विषय में यह कहूँगी कि बचपन से भगवान के जीवन की झाँकियाँ पंचकल्याणक उत्सव के उन अवसरों पर देखने को मिलीं जब किसी भी नव-निर्मित मंदिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा होती थी। कलाकार के हाथ से पत्थर से गढ़ी हुई मूर्ति को 'भगवान' के रूप में प्रतिष्ठित करने का अभिनय भावनाओं के उदात्तीकरण का मूर्तिमान साधन है। श्रद्धापूरित अभिनय की यह प्रक्रिया सचमुच ही गर्भमंगल से लेकर मोक्ष-कल्याणक तक पहुँचते-पहुँचते भावावेश में डूबे हृदयों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है कि भावना-शील प्राणी पत्थर की मूर्ति में भगवान के दर्शन करने लगते हैं।

सो, 'पंचकल्याणक' अभिनय-प्रणाली श्रद्धालुओं के हृदय से उपजी, धार्मिक उत्सव के रूप में प्रस्थापित, एक तरह की लोकमंच-विधा है, जिसमें बाहर के कलाकार-अभिनेता भाग न लेकर समाज के श्रद्धालु उपासक, भावनावश भाग लेते हैं। इस प्रकार के पंचकल्याणकों की प्रस्तुति की सफलता लोक-कला की साधना के साथ-साथ श्रद्धा और भावना की दृष्टि से आँकी जाती है। जैन तीर्थंकरों के ये पंचकल्याणक (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण) जैन समाज के लोकमंच पर जिस प्रकार परम्परा से प्रदर्शित किये जा रहे हैं, उनकी विशेषता यह है कि तीर्थंकर के माता-पिता को अभिनीत करने वाले मूर्धन्य सद्‌गृहस्थ आजीवन संयम-व्रत साधते हैं, और धार्मिक कार्यों के लिए सामर्थ्यानुसार विपुल धन दान करते हैं। सारे पात्र और सारा वातावरण व्रत-नियम-संयम की भावनाओं से आपूरित रहता है।

सदैव ऐसा लगा कि, क्यों न धार्मिक उत्सव की यह विधा, अभिनय की लोकमंचीय विधा के रूप में विकसित और स्थापित होकर, भगवान के जीवन से उन सबको परिचित कराये जो किसी भी अन्य धर्म के अनुयायी होते भी महान् पुरुषों के जीवन और दर्शन को अभिनय-विधा से ग्रहण करना चाहेंगे; और क्यों न यह पंचकल्याणक की अभिनय-शैली मंच-नाटकीय विधा में संयोजित की जाये! भगवान के जीवन को दरशाने की यह विधा, जो परम्परा से व्यवस्थित और स्वीकृत है एवं उसी क्रम में बद्ध है जो भगवान की पूजा करने में प्रयुक्त होती है, निश्चय ही एक समन्वित नियोजित नाटक-लेखन का पथ प्रशस्त करती है। इसलिए इन नाटकों का रूप उस विधा पर आधारित है।

पर, इस आकार-प्रकार की विधा को नाटक में साधने में बहुत बड़ी कठिनाई आड़े आती है। जबकि पंचकल्याणक समारोह में 'मूर्ति' भगवान की भूमिका निबाह देती है, मंच पर किसी व्यक्ति को इस भूमिका में लाने की न ही परम्परा है और न ही सामान्य जैन जन-मानस को यह ग्राह्य हो पाता है। अत: नाटक में महावीर के वैराग्य लेने के बाद के दृश्यों में छाया-चित्र या भामण्डल को भगवान की उपस्थिति के प्रतीक-रूप में लायी हूँ।

नाटकों की भाषा के विषय में आश्वस्त होना कि वह सबको पसन्द आयेगी और वह उचित एवं सरल लगेगी अथवा कठिन और जटिल, इन सबका समाधान करना कठिन काम है। महावीर भगवान जैसे महान् व्यक्तित्व के जीवन के पूरे विस्तार एवं उनके दर्शन के विषय में सरल-सहज होना तो दूर, शब्द मुखरित करने का साहस पूरा मनोबल बटोरकर करना पड़ा। कहीं-कहीं भोजपुरी भाषा को प्रयुक्त किया है। यह भाषा उस समय की नहीं है पर भगवान की जन्मभूमि वैशाली है और वहाँ की वर्तमान जन-भाषा एक प्रकार की 'भोजपुरी' है जो अतीत और वर्तमान में एक सम्पर्क-सूत्र-सा बनकर आ सकती है, यह दृष्टि मुझे सुहावनी लगी।

चरित्र-चित्रण में, विशेषकर माँ त्रिशला के चरित्र को एक सामान्य माँ की तरह मानने का मन नहीं हुआ। तीर्थंकर बनने वाली आत्मा असाधारण होती है जो जन्म-जन्मान्तरों में अनेकों प्रकार के असीम सुख, असीम दुख, असंख्य अनुभवों से गुजरती तीर्थंकरत्व की क्षमता प्राप्त करती है। ऐसी आत्मा की जननी भी साधारण नहीं हो सकती जैसी हम किसी भी एक नारी की कल्पना करते हैं। त्रिशला की अपने पुत्र महावीर के प्रति भावना-प्रतिक्रियाएँ एक अन्य स्तर और आयाम की ही होंगी, सम्पूर्ण ममता में निमज्जित होते हुए भी ऐसा मैंने माना है।

इन तीनों रूपकों के सृजन का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन्हें जनसभाओं में मंच पर प्रस्तुत किया जाये। प्रेक्षागृहों का मंच सबसे अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि वहाँ प्रकाश-आयोजन और ध्वनि-निक्षेप के यान्त्रिक साधनों का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु सब जगह ऐसे साधन उपलब्ध नहीं होते। अतः प्रस्तुति के रूप और विधि, और विस्तार में क्या परिवर्तन किये जायें इस विषय में अनुभवी, दक्ष नाट्य-निर्देशक स्थानीय स्थिति और उपादानों के अनुसार स्वतन्त्र निर्णय लेंगे। 'मानस्तम्भ' मूल रूप में रेडियो-रूपक है जहाँ पात्रों के वार्तालाप और कथा-प्रवाह अदृश्य ध्वनि पर आश्रित हैं। देश के प्रायः सभी आकाशवाणी-केन्द्रों से समस्त भारतीय भाषाओं में इसका प्रसारण और पुनः प्रसारण हो चुका है। 'मानस्तम्भ' के पात्र सरलता से मंच पर आ सकते हैं। पृष्ठभूमि में हुई घटनाओं को 'फ्लैश बैक' पद्धति पर, 'पूर्व घटित' के रूप में प्रक्षेपित किया जा सकता है। सूत्रधार की परिकल्पना भी की जा सकती है जो कथा के सूत्रों को जोड़ता है। मंच पर सूचना-पटों का भी उपयोग हो सकता है। इसी प्रकार, मैं सोचती हूँ कि 'दिव्यध्वनि-छन्द' को विभिन्न पात्रों के द्वारा काव्य-पाठ के रूप में भी मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। 'वीतराग' मंच-रूपक सहज स्वभाव से गूँदी गयी वह तरल माटी है जिसे निर्देशक मनमाने साँचों में ढाल कलात्मक रुचि के अनुसार सजा-सँवारकर प्रदर्शन योग्य बना सकते हैं। तीनों में से कोई भी नाटक चुनें, नाटक या रूपक को पढ़कर रचना की सम्पूर्ण भावभूमि को आत्मसात् करने के पश्चात् ही प्रस्तुतीकरण आयोजित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इन रचनाओं में मेरी दृष्टि प्रधानतः नाट्य प्रस्तुति की रही है, ऐतिहासिक तथ्यों की बारीकी से छानबीन करके अनेक विरोधी या विषम मान्यताओं में से किसी एक को चुनकर उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को प्रतिष्ठित करने की नहीं। फिर भी, मेरे अनुरोध पर समूची पाण्डुलिपि प्रसिद्ध इतिहासकार और साहित्य-सर्जक डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने आद्योपान्त देखने की कृपा की, और दो-तीन स्थलों पर संशोधन सुझाये। इसी प्रकार मूर्धन्य इतिहासकार डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने उन स्थलों का विशेष निरीक्षण किया जहाँ ऐतिहासिकता के विषय में मैं आश्वस्त होना चाहती थी। उन्होंने प्रायः सभी ऐसे स्थलों को निरापद एवं समीचीन बताया। इतना ही नहीं, उक्त दोनों विद्वानों ने नाटकों को इनकी शिल्पगत और साहित्यिक उपलब्धि के लिए सराहा है। मैं उनके प्रति ऋणी हूँ।

प्रिय श्री आलोक प्रकाश जैन ने इन रचनाओं को बहुत ध्यान से पढ़कर जो सुझाव दिये उनसे मैं लाभान्वित हुई। कई स्थल ऐसे हैं जहाँ मैंने चरित्रों को मानवीय परिवेश में कल्पित करना उचित समझा और कथा-वस्तु से उद्भूत होने वाले प्रभाव को प्राथमिकता दी। उदाहरणार्थ, यज्ञ की क्रूरता से उत्पन्न यज्ञकर्ता

की दयार्द्रता तथा व्याकुलता को दर्शाने के लिए चन्द्रदीप्ति का कथा-प्रसङ्ग नितान्त कल्पित है। महावीर युगीन दार्शनिकों के मत-वैभिन्य को अनेकान्त की धुरी पर चक्रायित करने में भी मैंने कल्पना से काम लिया है। दार्शनिकों के नाम उनकी विचारधारा या विचारधाराओं के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए प्रतीक रूप में नियोजित हैं, न कि उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति के रूप में।

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रति आभारी हूँ कि मेरी यह कृति निर्वाण महोत्सव पर प्रकाशित साहित्य में अंशदान बन सकी। ज्ञानपीठ की परिकल्पनाओं के पीछे साहू शान्तिप्रसाद जी की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा और पथ-प्रशस्ति है। उनके प्रति आत्मीय श्रद्धाभाव समर्पित है।

उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री हस्तीमल जी, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी, मुनि श्री डॉ० नगराजजी, मुनिश्री यशोविजय जी की भगवान महावीर की जीवनी-परक रचनाओं से कथा-वस्तु के परिदृश्यों और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को समझने में सहायता मिली है। उनके श्री-चरणों में मेरी कृतज्ञता निवेदित है।

कृतज्ञ हूँ उन प्राचीन पूजा और प्रार्थनाकारों की जिनकी पंक्तियाँ बीच-बीच में उद्धृत की हैं कि वातावरण की प्रतिध्वनि हृदयों में गूंजे। कविवर रवीन्द्रनाथ के एक पावन गीत को समसामयिक भावभूमि को स्वरबद्ध करने के लिए आभार-पूर्वक स्वीकार किया है।

रचनाओं की मूलभूत सामग्री शास्त्रों और पुराणों पर आधारित है तथा घटनाओं की कड़ी जोड़ने में और पात्रों की भावाभिव्यक्ति में मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निर्देशित कल्पना का ही सहारा लिया है। दार्शनिक चिन्तन की प्रस्तुति में सावधान रहने का प्रयत्न किया है। फिर भी इतने बड़े परिपार्श्व को संजोने में त्रुटि और भूल रहना सम्भव है। आशा है, विद्वज्जन सहृदयता-पूर्वक इस कृति को दृष्टिगत करेंगे। उनके संशोधन-सुझावों का स्वागत है।

शरत्-पूर्णिमा :
वीर निर्वाण संवत् : २५०१

फुन्या जैन

अनुक्रम

दिव्यध्वनि-छन्द

नृत्य-नाटिका

दिव्यध्वनि-छन्द

(भूमिका-गायन)

शाश्वत है यह सृष्टि, द्रव्य के
कण-कण में रूपों का नर्तन,
कालचक्र चलता अनादि से
रचता युग, करता परिवर्तन ।
सुख-दुख काल-चक्र के आरे
ऊपर उठते, नीचे आते,
बढ़ते घटते अविचल गति से
क्रमशः जन-जन सुख-दुख पाते ।
मानव जीवन का वह युग जब
कल्प-वृक्ष थे जीवन-आश्रय,
भोग-भूमि के सहज सुखों में
रत नर-नारी रहते निर्भय ।
कर्म-चेतना सुप्त, शक्ति का
बोध न अर्जन की तत्परता,
धीरे-धीरे युग समाप्ति पर,
प्रकृति रूप नव, रहा उभरता ।
उस युग के सभ्यता विधायक,
आत्म-साधना के अन्वेषक,
ऋषभनाथ पहले तीर्थंकर,
श्रमण-धर्म के आदिप्रवर्तक ।

(छन्द-परिवर्तन)

ऋषभ सुपौत्र मारीचि,
आत्म-जयी धर्म-धीर,
जनमे जन्मान्तर में,
जग-त्राता महावीर ।

(छन्द-परिवर्तन)

ऋषभ-युग और महावीर पुण्य गाथा ।
प्रसंग निर्वाण, नमित चरणों में माथा ।।

पूर्व-पीठिका

पहला दृश्य

[काल-पुरुष का प्रवेश, स्वरों के साथ नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : काल एक महाचक्र
मिटता है न बनता,
घूमता ही रहता है, शाश्वत की धुरियों पर।
काल-खण्ड जिसमें सुख बढ़ता है क्रमशः
वह है उत्सर्पिणी।
क्रमशः जहाँ घटता सुख
वह है अवसर्पिणी।
ऐसे अवसर्पिणी के एक काल-कक्ष से
उतरा वह खण्ड, जिसने
परिवर्तित की भोगभूमि —
भोगभूमि, जिसमें
कामना के पूरक थे
विविध भांति कल्पवृक्ष।

एक साथ जनमते थे
युगल पति-पत्नी।

जगती के तत्त्वों में आया परिवर्तन…

(इस पंक्ति को दो-तीन बार दुहरायें, साथ-साथ प्रकृति के तत्वों...सूर्य, चन्द्र, तारे, पर्वत, झरना, इन्द्र धनुष, मेघ आदि प्रतीकों के छाया-चित्रों का प्रदर्शन)

मानव की धमनी में कर्म-जनित नर्तन।

(इस पंक्ति पर असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प एवं वाणिज्य के प्रतीक मानवों का प्रवेश)

[सामूहिक नृत्य-गीत]

झुरमुर हुए कल्पवृक्ष
सूर्य-चन्द्र चमके
शुभ्र नील नभ में
नव तारा-ग्रह दमके —
पर्वत के रजत-शिखर
आये धरा वरने,
डोल उठे सागर
गतिशील हुए झरने।
चंचल समीर-संग
आभा इन्द्रधनुषों की
सतरंगी सरसी।
पहना हरीतिमा ने
फूलों का परिधान,
चिड़ियों का कलरव
पखेरुओं का मोदगान
गूंज उठा सृष्टिनाद
नव साहस भरने।

पार्श्व-स्वर : पुरुषार्थ सजग साकार हुआ
जड़ में रस का संचार हुआ
पर चकित खड़ा मानव मति-भ्रम
क्या रूप धरेगा जीवन-क्रम ?

[ऋषभनाथ का प्रवेश। साथ में भरत (पुत्र), बाहुबली, (पुत्र), मारीचि (प्रपौत्र), ब्राह्मी (पुत्री), सुन्दरी (पुत्री)।]

पार्श्व-स्वर : ऐसे में प्रकटे ऋषभनाथ
वे आदि पुरुष, 'कृतयुग' के मनु,
मानव का भय, संशय हरने
आये कर में ले प्रज्ञा-धनु।

ऋषभ : लो ! विश्व व्यवस्था सार-भूत
है कर्मठ मानव ब्रह्म रूप !
जीवन यापन के छह साधन
जन का सहयोगी उत्पादन।

(छह मानवों को तथा ब्राह्मी, सुन्दरी, भरत, बाहुबली और मारीचि को क्रमशः लक्ष्य कर)

असि ! बने शत्रु-गण की बाधक।
मसि ! हो लेखन की आराधक।
कृषि ! धान्य-पूर्ण करदे धरती।
विद्या ! द्वारा शिक्षित जगती।
शिल्पी ! हों, हस्तकला-साधक।
व्यापार ! वणिज धन-उन्नायक।
ब्राह्मी ! भाषा लिपि-बद्ध करो।
सुन्दरि ! सुगणित का ज्ञान वरो।
सुत भरत ! बनो तुम चक्रेश्वर।
सामर्थ्यवान् प्रिय बाहुबली !
यश प्राप्त करो तुम अजर अमर।
मारीचि ! पितामह का दुलार
खोले चिन्तन के मुक्त द्वार।

(वाद्य-यन्त्र पर नृत्य-प्रारम्भ)

पार्श्व-स्वर : धरती के प्राण हुए पुलकित
जीवन में उपजा समाहार।
सामाजिकता का स्वर-संगम
निःसृत सर्जन-सरगम उदार।
शिल्पों का मोहक रूपायन
असि, मसि, कृषि, लिपि, नर्तन-गायन।

(गायन सामूहिक नृत्य—अधिक गतिमान)

लिपि-लेखन, छन्द, गणित साधे।
गृह, वाट, ग्राम, पुर, पुल बांधे।
असि, मसि, कृषि, शास्त्र, शिल्प, वानिज
जीवन-यापन पथ संस्थापित।
है वर्ण-व्यवस्था सार-भूत
है कर्मठ मानव ब्रह्म रूप।

(नृत्य करते-करते सब का प्रस्थान)

[कथा-वाचिका का प्रवेश, स्वरों के साथ नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : नगरी अयोध्या, जो सुख को नकारती
धर्म की पवित्रता के सुफल स्वीकारती।

प्रत्यक्ष जगत् है उद्भासित
पर अन्तर्लोक अभी आवृत
एकान्त गमन, एकान्त मनन
तप से प्रदीप्त हो अन्तर्मन !

पार्श्व-स्वर : राज-भोग सिंहासन छोड़ दिये तत्क्षण,
त्याग-वैराग्य का प्रबुद्ध हुआ आकर्षण ।

(धीरे-धीरे सब का प्रस्थान)

भरत बने राजा, प्रभु बने वीतरागी,
तप की ज्वलन्त शिखा जन-जन में जागी ।
अम्बर थीं दिशाएँ—नग्न, सहचर था एकान्त,
तप की दुर्धर्षता से पावन किये वन-प्रान्त ।

[कालपुरुष का प्रवेश और नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : आदिनाथ......
स्रष्टा जो समाज के थे
द्रष्टा थे आत्मा के
पथिक अमरत्व के,
अंतर की प्रेरणा ने इंगित किया मार्ग
त्याग का, तपस्या का, संयम-वैराग्य का ।
होकर दिगम्बर जब चले वन-प्रान्त को
शतशत राजपुरुषों ने भी पकड़ी वही लीक,
हुए साधु ।

(इसी बीच मारीचि का प्रवेश)

पोता मारीचि, भरत-पुत्र, अति-तेजस्वी,
दीक्षित तो हुआ किन्तु संभ्रम था मन में
पथ-निर्माता है अन्य, पितामह ही वह सही—
मेरा क्यों बने वह जीवन का बन्धन ?
मैं भी तो स्वयंभू हूँ ।
साधुता का लक्षण निर्ग्रन्थता ही क्यों ?
भूख-प्यास, आतप का सहना क्यों मोक्षमार्ग ?
विद्रोही होकर बनाया निज पंथ, निज शिष्यावलि
भागी-भागी कर भोग और योग वरण
मारीचि ही भवान्तर में
बना फिर महावीर !

(गीत)

महावीर मारीचि जीव ने
अभिनव भव-भव रूप धरा।
राग और वैराग्य भाव को
क्रम-क्रम सहज वरा॥
भीलराज पुरुरवा तानता था
जब धनु मुनिवर पर।
छीन धनुष भिलनी बोली—
वनदेव यही, वन्दन कर॥
मुनि से व्रत ले लिये, बना
सौधर्म इन्द्र मरणोत्तर।
निर्मल मन से युक्त-भोग भी
भोगे उसने जीभर॥
जनमा बन मारीचि भरत-सुत
ऋषभनाथ का पोता।
फल काटे जन वही,
बीज जिस कर्म-बन्ध का बोता॥
ब्राह्मण बना कुतप तेजस्वी
देवयोनि फिर पायी।
फिर पशु, फिर नर-देह
और फिर मुनि-मुद्रा पर्यायी॥
फिर त्रिपृष्ट बन युद्ध और
विद्या-धरियों को भोगा।
मरा अतृप्त नरक दुख पाये
अभी और क्या होगा?
स्वर्ग, नर्क, मानव, पशु गति पा
जनमा और मरा।
महावीर मारीचि जीव ने
अभिनव भव-भव रूप धरा॥
राग और वैराग्य भाव को
क्रम-क्रम सहज वरा।

•••

दूसरा दृश्य

पार्श्व-स्वर : वीते कोटि-कोटि वर्ष
ऋषभनाथ-गाथा रही गूंजती
पुराण वेद-शास्त्रों में,
तीर्थंकर परम्परा
व्याप्त वायुमण्डल में ।

[कालपुरुष का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

दो हजार पांच सौ बहत्तर वर्ष पूर्व का
भरत-खण्ड, भारतवर्ष, पूर्वोत्तर प्रदेश
आधुनिक विहार-प्रान्त,
जिसमें था।
मल्लों लिच्छवियों ज्ञातृकों के अठारह गणराज्यों का
संगठित समर्थ संघ, वज्जि गणतंत्र
जिसके नेता थे चेटक
पार्श्व-प्रभु अनुगामी, नेता, स्वतंत्र ।
राजधानी वैशाली
जनतांत्रिक प्रचलित प्रणाली ।

[कथावाचिका का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

इसी राजकुल की कन्या,
त्रिशला प्रियकारिणी व्याही सिद्धार्थराज को
सिद्धार्थ........
दिव्यज्ञानी गुणवान,
थे कुण्डपुर के ज्ञातृगण-गणनायक

देते प्रेम-अभय सदा मानव समाज को।

कुण्डपुर·········

वज्जि गणराज्य-अंग

शोभा सुषमा का नित चर्चित प्रसंग

सिद्धार्थ और त्रिशला

श्रमण धर्म-पालक

उपासक पार्श्वनाथ के।

राज-युगल, ख्यातिप्राप्त—

वैवाहिक सुख-सौभाग्य

प्रणयचिह्न पुत्र नंदिवर्धन,

सुख के सोपान अभी और मानो शेष थे···

सुखद जीवन की, आषाढ़ शुक्ला षष्ठी का

एक मध्य-रात्रि-प्रहर

कि पलकों पर त्रिशला के, विभूतिमय स्वप्न-पंक्ति

उतरी, रोमांचित हो उठी, प्रियकारिणी·········

(त्रिशला का प्रवेश, जैसे स्वप्न-मग्न हो)

त्रिशला : यह कैसा आह्लाद हृदय पर छाया,

मैं जागृत हूँ—या स्वप्नपुरी की माया।

हैं ध्वनित चित्र, स्वर, स्पर्श कर रहे तन को,

अनुभूति अलौकिक करती पुलकित मन को।

(गायन—पूजाध्वनि के स्वरों में। साथ ही, सपनों में दिखी वस्तुओं को इंगित करते हुए त्रिशला का नृत्य-अभिनय)

सुर-कुंजर-सम कुंजर,[1]

धवल धुरंधरो।

केहरि केशर-शोभित

नख-शिख सुन्दरो।

---

१. त्रिशला के सोलह स्वप्न : (१) सफेद हाथी, (२) बैल, (३) सिंह, (४) कलशों से स्नान करती हुई कमला अर्थात् लक्ष्मी, (५) दो मालाएँ, (६) रवि, (७) शशि, तारा-मंडल सहित, (८) मीन युगल, (९) जल-पूर्ण स्वर्ण-घट, (१०) कमलों से भरा सरोवर, (११) गरजता सागर, (१२) सिंहासन, (१३) स्वर्ग का विमान, (१४) नाग विमान, (१५) देदीप्यमान रत्नराशि, और (१६) निर्धूम अग्नि।

कमला-कलस-न्हवन,
दुइ दाम सुहावनी।
रवि-शशि-मण्डल, मधुर
मीन-जुग पावनी।

(धुन परिवर्तन)

पावन, कनक-घट जुगम पूरन
कमल-कलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर
सिंह-पीठ मनोहरो।
रमणीक अमर-विमान
फणिपति-भुवन, रवि-छवि छाजई।
रुचि रतन रासि, दिपन्त दहन
सु तेज पुंज विराजई।

(त्रिशला का नृत्य करते करते प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : ये सखि, सोलह सुपने सूती सयनहीं।
देखे माय मनोहर पच्छिम रयनहीं ॥

(वाद्य-यंत्र ध्वनि)

(सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रवेश, नृत्य-अभिनय)

उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवन-पति सुत होसी फल तिहँ भासियो ॥

(दोनों का समवेत नृत्य वाद्य-ध्वनि पर)

[इसी बीच ज्योतिषियों और चारणों का प्रवेश]

पार्श्व-स्वर (चारणों के) :

मंगल प्रभात—मंगल प्रभात
जय त्रिशला, जय राजा सिद्धार्थ।
पुण्य-पुंज चक्रवर्ती-धारिणी
भाग्यवती जननी प्रियकारिणी।

(नृत्य करते-करते सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रस्थान)

[कथावाचिका का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : सेवा में जननी की नियुक्त देवी अप्सराएँ
स्नान, शृंगार, वसन, नित नवीन जतन करें।

बीते नव-मास, धर्म मंगल-मन-मोद भरे
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, प्रकटे त्रिशला के नन्द
स्वर्ण-वर्ण देह शुभ लक्षण प्रत्येक अंग।

(पूजा स्वर)

मति-श्रुति-अवधि विराजित जिन जब जनमियो,
तिहुं लोक भये शोभित सुरगन भरमियो ।।

(इंद्र, शचि, देवी-देवताओं का प्रवेश, घंटों की ध्वनि, देवलोक का दृश्य)

कल्पवासि-घर घंट-अनाहद वज्जिया।
ज्योतिप-घर हरिनाद सहज गलगज्जिया ।।

(धुन-परिवर्तन)

कम्पित सुरासन अवधिवल जिन-जनम निहचै जानियो।
धनराज तव गजराज मायामयी निरमय आनियो ।।

[नीचे दिये गये स्वरों के साथ इन्द्र-इन्द्राणी, देवताओं का नृत्य अभिनय। इन्द्र-इन्द्राणी घर-परिवार सहित सिद्धार्थभवन जाते हैं; भवन की तीन प्रदक्षिणा देते हैं। फिर गुप्त रूप से इन्द्राणी त्रिशला के शयन-कक्ष में जाकर उन्हें मायामयी निद्रा में सुला, भगवान को गोद में ले आती है और इन्द्र के हाथों में जन्माभिषेक के लिए सौंप देती है। वे भगवान को मेरुपर्वत पर स्थित पाण्डुक-वन में ले जाते हैं, वहाँ पाण्डुकशिला पर विराजमान करते हैं। फिर क्षीरसागर से जल भर कर सुमेरु पर्वत स्थित पाण्डुक-शिला तक हाथों-हाथ लाये जाते हुए १००८ कलशों से भगवान को स्नान कराते हैं।]

(धुन-परिवर्तन)

तिहिं करि हरि चढ़ आयउ सुर-परिवारियो।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय जिन जयकारियो ।।
गुपत जाय जिन-जननिहिं सुख निद्रा रची।
मायामयि सिसु राखि तौ जिन आन्यो सची ।।

(धुन-परिवर्तन)

आन्यो सची जिन रूप निरखत नयन तृपित न हूजिये।
तव परम हरपित हृदय हरिणे सहसलोचन पूजिये ।।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईशान इंद्र सु चंद्र-छवि सिर छत्र प्रभु के दीनऊ ।।
लंघि गये सुरगिर जहाँ पाँडुक-वन विचित्र विराजहीं।
पाँडुक-शिला तहँ अर्द्धचंद्र समान मणि-छवि छाजहीं ।।

(धुन-परिवर्तन)

रचि मणिमंडप सोभित मध्यसिंहासनो।
थाप्यो पूरव-मुख तहँ प्रभु कमलासनो।।

(धुन-परिवर्तन)

बाजने बाजहिं सची सब मिलि धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब देव कौतुक धावहीं।।
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं हाथ सुरगिर ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इंद्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं।।
करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतहिं सेवा राख सुरपति आप सुरलोकहिं गये।।

(नृत्य करते करते सबका प्रस्थान)

[कालपुरुष का प्रवेश—नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : आंचल में भर मोद, वही सौरभमय मलय समीर।
तीर्थंकर बालक जनमा है हरने सबकी पीर।।
नव-जीवन निर्माण हेतु बन्दी-जन विचरे मुक्त।
वर्धित धन-सम्पत्ति विश्व की, सत्य-भावना युक्त।।
पर्वत, मरु-थल, चट्टानों से शक्ति-किरन बिखरीं।
स्वर्ण-रजत मुद्राओं से भर कनक-डाल सिहरीं।।
जन-स्वर हर्षित गूंज उठे, शिशु 'वर्धमान' सुख-खान।
वसुधा पुलकित, धन्य-धन्य दिशि-दिशि व्यापक कल्यान।।

•••

तीसरा दृश्य

[महाराज सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रवेश]

सिद्धार्थ : प्रिये !
नंद्यावर्त प्रमोद-भरा
सपने-रञ्जित आकाश, धरा
पर अन्तर्मन में अकस्मात्
गुञ्जित होता विस्मय-निनाद
है आठ वर्ष का वर्धमान
पर स्वयंबुद्ध अति-ज्ञानवान,
गुरु द्वारा सन्मति नाम-करण
गुण जन्म-जात, होते न वरण।

त्रिशला : राजन् ! मैं भी विस्मय विमुग्ध
है प्राण-अंश सम्पूर्ण सिद्ध !
नयनों की झीलों में बिम्बित
हैं तीन लोक; मैं, चकित भ्रमित !
(अकस्मात् हर्षविह्वल संदेशिनी का प्रवेश—नाचती हुई सी बोल उठती है)

संदेशिनी : ओ क्या देखा ? क्या सुना विशेष ?
मैं लायी अद्भुत संदेश
सुध भूली निज-मन आवेश
सन्मुख माँ त्रिशला, सु-नरेश !
(रानी त्रिशला और सिद्धार्थ की उपस्थिति को अवगत कर क्षमा मुद्रा में)
माँ त्रिशला जय ! जय कुण्डनरेश।
माँ त्रिशला जय ! जय कुण्डनरेश।

त्रिशला : संदेशिनि ! बोलो, निःशंक
तुम पर क्या छाया आतंक ?

संदेशिनी : है बाहर बालक-मण्डली
वह आयी तज क्रीड़ास्थली

सिद्धार्थ : क्या वर्धमान ? उसके साथी ?
सि० और त्रि० : बाहर क्यों ? उनको ले आती !

[वाद्य-धुनों पर चार बालकों का
चित्त हो उन्हें देखते हैं, पर वर्धम
शंकित]

सिद्धार्थ : (स्वगत) इनके मुख पर कैसी उमं

त्रिशला : (स्वगत) पर वर्धमान क्यों है न सं

सिद्धार्थ : (बालकों से) प्रिय कीर्ति ! सुबाहु
है कहाँ तुम्हारा निक

कीर्ति : है मित्र हमारा महावीर
(बहुत उत्साह भरे स्वर में)
वह टहल रहा है नदी-तीर

सुबाहु, सुरुचि, सौमित्र : (एकसाथ जोर से)
हाँ,·· महावीर···वह महावीर···
वह महावीर·· वह महावीर···

(नाच

एक बालक : हम खेल रहे थे उपवन में
इक विषधर आया फन ताने

दूसरा बालक : हम भय से भर कूदे-फांदे
हो गये मग्न, घिग्घी बांधे

तीसरा बालक : पर वर्धमान कब घबराया ?
जा सर्प पास वह मुस्काया

चौथा बालक : ऐसे चुमकारा विषधर को
जैसे वह कोई प्रियवर हो

चारों बालक : हम सब अचरज में भरे भरे
भागे भागे इस ओर बढ़े
देखा, न वहां थे महावीर

(बालकों से)
तुम हो भोले-भाले बालक
डूब रहे हो अचरज में—
कैसे जुड़ा प्रेम का नाता
वर्धमान और विषधर में !
सुनो, अगर तुम सच्चे मन से
पशु-पक्षी को कर लो प्यार।
दानव-मानव को अपनाओ
वे न करेंगे तुम पर वार।
यदि चोट उन्हें ना पहुँचाओ
तो सत्य वीर तुम बन जाओ।

बालक : तो प्यार करें और वीर बनें
यह सीधा सा जादू गुन लें।
पशु-पक्षी दानव बनें मीत
क्यों भय से, फिर हो कोई भीत ?
पर वर्धमान है 'महावीर'
वह महावीर, वह महावीर

(बालकों का प्रस्थान)

सिद्धार्थ : (त्रिशला से)
प्रिये !
वर्धमान की करुणा महती
मेरा मन आशंकित करती।
वैशाली गणतंत्र, धन-धान्य युक्त है
किन्तु कहाँ दोषों से विमुक्त है ?
आस-पास के राजतंत्र सब
करते कितना अनाचार
वर्धमान की युवा अवस्था
सह न सकेगी यही प्रहार।
हिंसा-असि का कुटिल घात
कैसे झेलेगा यह कुमार ?

त्रिशला : राजन् !
महावीर-छवि पद्म-नाल पर विकसित उज्ज्वल फूल
कर्दम-तल में कमल फूलता, क्यों हम जाते भूल ?
(हर्षित और आश्वासित हो नृत्य करते करते
दोनों का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[एक राजतंत्रीय राजधानी के बाजार का दृश्य । एक ओर पशुविक्रेता, दूसरी ओर दास-दासी विक्रेता, मध्य में मदिरालय का स्वामी खड़ा है। एक नट-नटी युगल गाते नाचते प्रवेश करता है]

नट-नटी : यह राजतंत्र ''यह राजतंत्र'''
है प्रजा दास, राजा स्वतंत्र
(धुन-परिवर्तन)
हम राजा अपने मन के
नाचें कूदें, नट बनके
गुरु 'चार्वाक' के चेले
हमने न कभी पापड़ बेले
जो हाथ लगे हथियाओ
मूंछों पर ताव चढ़ाओ
थैली भर मुद्रा लाओ
मद-मस्त पियो और खाओ
यह कंचन सुवरन काया
इसको कहते क्यों माया ?

[एक ओर से राजपुरुषों का प्रवेश, दूसरी ओर से यज्ञ-पुरोहित पंडित का वाद्य-धुन पर प्रवेश। राजपुरुषों को नट-नटी घेर कर, पशु-विक्रेता के पास ले जाते हैं। स्वरों के साथ अभिनय-नृत्य]

(वाद्य-धुन पर राजपुरुष पशु खरीदकर दूसरी ओर गड़े
पुरोहित को देते हैं और उधर से प्रस्थान कर जाते है।
पुरोहित वाद्य-धुन पर नृत्य-अभिनय करता, जैसे पशु
उसके कब्जे में है, दूसरी ओर से प्रस्थान करता है)

[दो अन्य राजपुरुषों का प्रवेश। नट-नटी उनको घेर कर मदिरालय
के पास ले जाते हैं]

पार्श्व-स्वर : मदिरालय कितना सुखकारी
भूलो दुनिया, चक्करदारी
पीओ, पीओ, खो दो होश
डूबो, डूबो खोलो कोष
ना हो धन तो, धक्के खाओ
घूरे पर जाकर सो जाओ।

(राजपुरुष उन्मत्त हैं, पिये हुए है, उनका वैसा ही नृत्य-अभिनय—
वे लुढ़क कर सड़क पर गिरते हैं, कातर मुद्रा में)

[अन्य दो व्यक्तियों का प्रवेश जो श्रेष्ठी-धनी प्रतीत होते हैं। नटनटी
उन्हें दास-दासी विक्रेता के पास ले जाते हैं। नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : दास-दासियों की दूकान
इस पर विकता है इन्सान
प्राणों का होता व्यापार
दासी बन जातीं उपहार
विक्रेता को धन से प्यार
क्रेता पाता सब अधिकार
नर-नारी नाना रंग रूप
कोई छाया, कोई धूप

[इसी बीच में एक ओर से हाथ में फूल के गजरे लिये एक मालिन का
प्रवेश, और पान-गिलौरी लिये एक सुगन्धी का प्रवेश। दूसरी ओर से
दो संभ्रांत दिखती (राजकुमारी-जैसी) नारियों का प्रवेश। उन
चारों ने दास-दासी विक्री के दृश्य अवाक् होकर देखे हैं। वाद्य-धुन
पर मालिन और तम्बोली का नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : (मालिन के)
ले लो फूल, ले लो हार (बार बार स्वरों की गूँज)
छोड़ो निर्दय अत्याचार (बीच बीच में वाद्य-ध्वनि)

पार्श्व-स्वर : (तम्बोली के)

ताम्बुल, पान गिलौरी मोलो

(बार बार स्वरों की गूंज)

प्राणों का रस-रक्त न तोलो

(बीच बीच में वाद्य-ध्वनि)

(दोनों युवतियाँ बढ़ कर गजरे ले, जूड़े में लगाती हैं और पान ले मुख में रखती हैं। नृत्य-अभिनय)

पार्श्व-स्वर : (दोनों युवतियों के)

हम सीधे मानव, सरल भाव
हमको भाता रँग-रूप चाव
पर ये पुर, हिंसा-मत्त चूर
प्राणी का प्राणी शत्रु क्रूर

नट-नटी : तुम कौन देश से आयी हो ?
किसका संदेशा लायी हो ?

युवतियाँ : हम ग्राम कुण्डपुर से आये
इस हाट-बाट में भरमाये
हैं साथ हमारे वर्धमान
सिद्धार्थ-पुत्र, अति दयावान
वे छिटक गये हम सखियों से
पहुँचे होंगे सरिता-तट पे
हम उन्हें खोजने आयी हैं
यह दृश्य देख अकुलायी हैं
हम यहाँ न इक पल रुक सकते
क्रन्दन न किसी का सुन सकते

(दोनों युवतियों का प्रस्थान)

हम सीधे मानव, सरल भाव
हमको भाता रँग रूप चाव
पर ये पुर, हिंसा-मत्त क्रूर
हम अभी कुण्डपुर चलें दूर

[पार्श्व से ऐसी ध्वनि जैसे बैलगाड़ियों पर सवार हो बहुत से या
जा रहे हों, बैलों के गले से बंधी घंटियों की ध्वनि। यदि छायाचि
में बैलगाड़ियाँ जाती हुई दिखाई जा सकें तो दिखा दें]

शिवादेवी रानी है अवन्ती नृपराज की,
मगधराज बिम्बिसार की प्रिया चेलना,
दशार्ण के नरेश की वल्लभा सुप्रभा।
दूर-दूर राज्यों से आये प्रिय पाहुन
स्वागत में पलक बिछा, करती आवाहन।

वासवी : (युवतियों में से एक)
चन्दना ! चन्दन सी निर्लेप छटा शिखा रूप
सरोवर में कमल ज्यों, सुहासिनी मधुर धूप।

चन्दना : वासवी ! ज्येष्ठा ! सुदर्शना ! शीलमणि !
रूपसुन्दर ! गुणशीला ! महामाया ! रत्नकर्ण !
किन्तु कहाँ वर्धमान, कुण्डपुर नरेश के ?
कहाँ रहे उदयन, पुत्र शतानीक के ?

शीलमणि : उदयन अभ्यास-रत वीणा के वादन में
वर्धमान टहल रहे चिंतन-रत उपवन में

रत्नकर्ण : उनकी मुखमुद्रा नित वीतराग मन-भावन
नेत्रों की कोमल गहराई में घन-सावन

रूपसुन्दर : निश्चय ही महावीर साथ थे वहाँ,
जहाँ हुई प्रतियोगिताएँ
धनुर्विद्या, नृत्य-गायन,
चित्र-सज्जा, वार्ताएँ।

(युवक-युवतियों का सामूहिक नृत्य)

पार्श्व-स्वर : पूरे सप्ताह भर,
वासंती सात दिन।
विद्याधर से कुमार,
अप्सरा कुमारियाँ।
कलियों की चटकन पर
युवती-दल मचल उठे
युवकों में होड़ लगी
रोम-रोम फड़क उठे।

(घोषक के स्वरों पर युवक-युवतियाँ मंच पर विशेष-विशेष मुद्रा में)

पार्श्व-स्वर : (घोषक के)
सर्वश्रेष्ठ मदन बाल
सर्वोत्तम मदनिका

निर्वाचन उत्सव की
उठ रही यवनिका।

[कथावाचिका और कालपुरुष का साभिनय मंच पर प्रवेश]

पार्श्व-स्वर (घोषक के) :
मंडप के मंच पर करते प्रवेश
वज्जिगण अधिनायक सिंह वर-नरेश
संग हैं, सुशोभित गांधारी बाला
महारानी रोहिणी,
सिंहभद्र महानायक
निर्णायक धनुर्धर के।

(राजा सिंह, रानी रोहिणी एवं महानायक सिंहभद्र (चेटक-पुत्र) सब आकर स्थान ग्रहण करते हैं। विजय की पुष्पमालाएँ लिये अनुचर प्रतीक्षारत हैं।)

पार्श्व-स्वर : वैशाली की जय। वज्जि संघ की जय।
लिच्छवि-नरेश महाराजा चेटक की जय
गणतंत्र की जय...
(नीचे दिये स्वरों के साथ कालपुरुष और कथा-वाचिका का अभिनय-नृत्य)

पार्श्व-स्वर : आसपास ग्रामों से
दल-बादल घुमड़े हैं
प्रतियोगी, दर्शकगण
निर्णय को उमड़े हैं
प्रिय अभय, मेघराज, प्रभंजन, वारिषेण,
सूर्यवीर, मणिभद्र, मृत्युंजय, मृगीयेप;
धनुर्विद्या-दक्ष राज्यपालक, कुमारदत्त
पा गया धनुष-बाण नया अर्थ, नया बाण

सिंहभद्र : प्रज्ञा के अश्व की गति निर्बाध है
जितनी लम्बी उड़ान, उतना संकट वितान
ज्ञान के घोड़े की वल्गा जो थाम सका
जिसकी भुजाओं में सिंह की सबलता
बाण में प्रभंजन, है लक्ष्य में सफलता
किन्तु तीर जिसका दया से प्रत्यंचित
घाव से विमुख, उपचार को समर्पित

निर्भय जो रहता है, वह तो है मात्र वीर
निर्भय जो कर दे, वही है महावीर।
शुभ्र कान्त मोती, बस एक ही था वैसा
धनुर्वीर वर्धमान, लक्ष्य-दक्ष ऐसा।

(साधुवाद ! साधुवाद ! साधुवाद ! की सामूहिक ध्वनियां)

[अम्बपाली का प्रवेश। दर्शकों में उत्साह की लहर की ध्वनि]

दर्शक-स्वर : राज-सुन्दरी अम्बपाली की जय।
कला-साम्राज्ञी अम्बपाली की जय।

[नीचे दिये पार्श्व-स्वरों के साथ मंच पर काल पुरुष और कथावाचिका का अम्बपाली को इंगित करते हुए नृत्य-अभिनय—वाद्य-स्वरों के साथ]

पार्श्व-स्वर (चंदना के)
गरिमा वैशाली की,
नृत्य-पारंगता
अम्बपाली, नगर-वधू
जन-मन आराधिता।
इनकी प्रसिद्धि है
न केवल छन्द-अभिनय की
पारखी ये, प्राणमय
स्पन्दन, स्थिति, लय की।
उतरी है गहरे में
उनकी अन्तरात्मा
साधी है जीवन में,
समता समानता।

अम्बपाली : जीवन के मरुस्थल में
कला-उद्यान,
शिशिर की प्रखरता में
मधु की मुस्कान।
प्रस्तर के अंगों में
भरती कला-प्राण।
आंधी में ध्रुवतारा
आत्मा का मान।

[नन्दिवर्धन का प्रवेश]

नन्दिवर्धन : कितना होता है यह सहज और स्वाभाविक
कि यौवन के गवाक्ष से
दीखे सब आकर्षक, रुचिर, मनोरम।
धरा की धमनियों में झंकृत रंगीन राग
युवति-कटाक्षों में प्रतिबिम्बित हो सुहाग।
किन्तु मेरा अनुज वर्धमान
कहता है बारबार
"परिधियाँ परिवार की, महलों के लघुवृत्त
सभी कसे बन्धन हैं
रोकते विस्तार को—आत्मा के प्रसार को"
मन के जिस गवाक्ष से देखता वह धरती को
आमों की मंजरी को, भौंरों को
सरिता की लहरों को, सरोवर के पद्मों को
जन-जन को, नारी को, रमणी को
दृश्य वहाँ दूसरा है :
स्पर्श, रस, गन्ध की अनुभूतियों के उस पार
लहराता है आत्मा का दिगन्तव्यापी पारावार।
सब कुछ वहाँ अपना है, सब के हम अपने हैं
कैसे दिव्य सपने हैं !

उधर,
माता का वात्सल्य उच्छल अधीर है
'अविवाहित अब तक क्यों मेरा महावीर है'
(नन्दिवर्धन चिन्तामग्न······अन्धेरा)

पार्श्व-स्वर : अन्तर की कल्पना यथार्थ बन छा गयी
त्रिशला की कामना मन में समा गयी।
[कालपुरुष का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]
कालचक्र वर्ष, मास, दिन, पल कर बीत गया
माँ की मन-वीणा का निष्फल संगीत गया
सिद्धार्थ-स्वप्न घनीभूत उमड़-उमड़ रीत गया
आत्मा के यात्री का अविचल प्रण जीत गया
त्रिशला-सिद्धार्थ पार्श्वप्रभु के थे अनुयायी
ममता पर संयम कर, समता अपनायी

देश-देश रचित-तिलक रक्त कलुप ग्लानि
तव मंगल शंख ध्वनित, तव दक्षिण-पाणि !
तव शुभ संगीत-राग, तव सुन्दर छन्द।
आओ दानवीर, देओ त्याग कठिन दीक्षा
महाभिक्षु ले लो सब की अहंकार भिक्षा
तव शुभ संगीत राग, तव सुन्दर छन्द
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त-पुण्य !
करुणाधन ! धरणी-तल करो कलंक-शून्य।

[गायन समाप्त]

लौकान्तिक देवों के स्वर :

"जय जय नंदा ! जय जय भंता !
जय जय खत्तिय-वरद सभा वुज्झहि भगवन् !"

हे क्षत्रिय-वर वृषभ ! आपकी जय हो।
आप दीक्षा ग्रहण करें।

पार्श्व-स्वर : वर्धमान का स्वयं-बोध ही लौकान्तिक देवों का स्वर
ध्वनित हुआ अन्तर्निनाद उद्भासित रूप प्रखर
मन में ठाना महाभिनिष्क्रमण
छोड़े स्वजन, और पुर-परिजन।
तृण-सम वैभव त्याग पलों में
वरा तपस्या का साधन
पहुँचे निर्जन ज्ञातृखण्ड में
आत्म-रश्मियाँ रथ-वाहन।
पंचमुष्टि से किया सघन कुन्तल केशों का लुंचन
जैसे वे परिधान-सूत्र अव्यक्त रेशमी बन्धन

महावीर स्वर (पार्श्व से, गूंज) :

वारस वासाइं वोसट्ठ काए चियत्त देहे जे केई उवसग्गा
समुप्पज्जन्ति, तं जहा, दिव्वा वा, माणुस्सा वा,
तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पणे, समाणे
सम्मं सहिस्सामि, खमिस्सामि, अहियाससामि।

पार्श्व-स्वर : बारह वर्ष तक जब तक मुझे केवल ज्ञान नहीं होगा, मैं शरीर की सेवा-सुश्रुपा नहीं करूंगा। देव, मनुष्य या तिर्यंच की ओर से जो भी उपसर्ग आयेंगे, मैं उनको समभाव से सहन करूंगा, और मन में किंचित् मात्र उद्वेग न आने दूंगा।

(धुन-परिवर्तन)

वे मृतकासन वज्रासनीय, गोदूहन इत्यादिक गनीय।
वे आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहित ममता निवार॥

(धुन-परिवर्तन)

रंगमहल में पोढ़ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पच्छिम निशि भूमि में सोवैं संवरि काय॥
गज चढ़ि चलते गरव सों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालें करुणा अंग॥

(वाद्य-धुन पर ग्रीष्म, शीत, वर्षा, आँधी, बिजली आदि के दुर्धर रूपों का नृत्य—अन्त में शान्त)

पार्श्व-स्वर : (गायन) इहि विधि दुर्द्धर तप तपें तीनों काल मंझार।
लागे सहज सरूप सों, तन से ममत निवार॥

पार्श्व-स्वर : विचरे प्रभु घाटियों, गुफाओं
पर्वत के शिखरों पर,
नगर-वीथियों निर्जन मरु वन-प्रान्तर
निर्भीक और दिगम्बर
ध्यान-रत होते रात्रि-दिवस
अचल, मौन, निराहार।
वे जब विचरते तो
पाँवों की चाप से वनस्पतियों,
कृमि-कीटों के प्राणों को बचाते
मन वचन-काय से संयम को साधते।
जंगली प्रदेश के प्रान्तरों में पहुँच कर
ध्यान-मग्न बैठते, मौन और पलक-मूंद।
वन-वासी क्रूर-जन लकड़ी से ठेलते, करते थे ठट्ठा
होते आनन्दित अनाचार करके।

(आसामी जंगली कबीलों की लोकधुन पर वनवासियों का वीभत्स नृत्य, कुत्तों की भौंक)

पार्श्व-स्वर : (गायन) (धुन जोगी रासा)
प्रभु मुद्रा शान्त गम्भीरा
नयनों में करुणा नीरा
पाहन से फूटे झरने
प्रतिबिम्बित कोमल सपने

तप, ममता के हरियाले
निर्भय मानव हरषाये
जन-जन मन अंदर विहँसा
अंकुराया बीज अहिंसा।

(उक्त गायन स्वरों के साथ-साथ जंगली मानवों का समूह सामूहिक
नृत्य करते-करते शान्त हो नमन करता चला जाता है।)

पार्श्व-स्वर : आते चोर डाकू
भयंकर लड़ाकू
निरखते एक टक अनोखे जीव को
कि जिसके तन से लिपटी धूल, लताएँ, घास अनेकों।
(दो डाकुओं का प्रवेश)

पहला डाकू : अरे लो मिल गया, यह छद्मवेशी गुप्तचर
सधाऊँ आज अपने लोह-से, दो हाथ इस पर।

दूसरा डाकू : पकड़ यह रज्जु, इसको बांध ले कस कर
खड़ा क्या देखता ? कर काम अपना ध्यान देकर।

पहला डाकू : ध्यान तो है, हो गये पर सुन्न कर कैसे !
हो गया कीलित, कि कोई रोकता जैसे
यह रस्सी हाथ से फिसली
बटों की सलवटें निकलीं
बिखर परमाणु कण छोटे
लिपट कर धूल में लोटे

दूसरा डाकू : ये कैसा कर दिया जादू, मैं कैसे हो गया बेबस
मुझे ज्यों नाग मेरे ही कलेजे का गया डस ?
पछाड़ें खा रही उत्ताल मेरे रक्त की धारा
कि जैसे सिर पटक कर ढूंढती अपना किनारा।

पहला डाकू : ये तो निरपेक्ष मौन अविचल
तन से झर रहीं किरन उज्ज्वल

दूसरा डाकू : नेत्रों से बरसी करुणाभा
बिखरी होठों पर अरुणाभा

दोनों डाकू : हे महातपस्वी ! निर्विकार !
शत-शत चरणों में नमस्कार

(नमस्कार करते चरणों में माथा रगड़ते नृत्य-अभिनय)

पार्श्व-स्वर : आर्त अघोरी तापस
नर-बलि के अभ्यासी

(दो तांत्रिकों का प्रवेश)

देखते सुगठित नग्न देह, निपट क्रियाहीन
होते प्रसन्न, करते अट्टहास
फेंकते उन्मत्त हो अनगढ़ मंत्र-पाश।

(मन्त्र पढ़कर अट्टहास करते हैं। तांत्रिक क्रिया, नृत्य में)

प्रभावित हो निरखते वे प्रभू की शान्त मुद्रा,
तनिक विचलित न आकुल, वह निरी संचेत निद्रा।
(छन्द परिवर्तन)
नर-बलि के इच्छुक तापस हो जाते हतप्रभ,
झुक जाते प्रभु चरणों में हो मंत्र-मुग्ध नर सब

(तापस तांत्रिकों का शान्त गम्भीर होकर जाना)

पार्श्व-स्वर : बीते वर्ष पर वर्ष
प्रकृति, पशु, मानव से विविध साक्षात् भोगते
आत्मा के स्वभाव को ध्यान-मग्न सोचते,
जग के पदार्थों के बदलते स्वरूप को
अलग-अलग मानवों की भिन्न चित्तवृत्ति को
भावनाओं के अन्तर को
संस्कारों और व्यवहारों की विविधता के बीच
पाते दृष्टियों के संगम का अनेकान्त सूत्र।
शुद्ध ज्ञान के सरोवर में
खिल उठता जीवों की करुणा का कमल
सुवासित कर जाता उर को ज्ञान का पराग
दर्शन भेद-विज्ञान का, बोध जाता मन को
किस प्रकार बाँधता है आत्मा के निज को
जड़ की ममता का दृष्टि-राग।
(कालपुरुष और कथावाचिका का प्रवेश एवं नृत्य अभिनय)
शुद्ध ज्ञानमय दर्पण में जब उदित हो रहे तथ्य।
उन्हें समन्वित कर मानव-हित, देना था उपयोगी अर्थ॥
कर विहार वह नगर गांव में, लेते अनिमित बना आहार।
सध जाती भोजन विधि, यदि हो अमुक परिस्थिति, अमुक प्रकार॥

इसी प्रकार
करते विहार
पहुँचे कौशाम्बी
वर्धमान।

एक[1] ओर कौशाम्बी में थी व्याप्त भक्ति-धारा।
और दूसरी ओर बरसता था विष अंगारा।।
कौशाम्बी-नृप शतानीक की राज्य लालसा भड़की।
अंग देश के दधिवाहन पर बिजली बन तड़की।।
चम्पापुरी ध्वंस कर डाली, अंतःपुर लूटे।
क्रूर काक सेनापति के दल-बादल थे टूटे।।
प्रतिशोधी ज्वाला की आहुति बनी धारिणी रानी।
'वसुमति' राजकुमारी की क्षत-विक्षत भाग्य-कहानी।।
वही बन्दिनी विवश 'चन्दना' चरम वेदना कोमल तन में।
वर्धमान ने इधर कठिन प्रण भोजन का था ठाना मन में।।

उपजा एक विशेष अभिग्रह मन में, जन-हित से संयोजित।
पाँच मास पच्चीस दिनों तक, हुआ न पूरा कल्पित।।
कौशाम्बी के ज्योतिषियों ने, गणना-मति से किया विचार।
समाधान पर प्राप्त हुआ नहिं, किस विधि लेंगे प्रभु आहार।।
स्तब्ध-मना सब नगरी-नागर, चिन्ता राज-भवन छायी।
प्रभु-अनुगामिनी मृगावती रानी अन्तर से अकुलायी।।

(भगवान महावीर के अनाहार से महाराज शतानीक, रानी मृगावती और कौशाम्बी के नर-नारियों की आकुलता)

नर-नारी स्वर : निराहार हैं प्रभू, अभिग्रह क्या है, हम कैसे जानें।
आतमा के तल-पट पर चित्रित, ताने-बाने वे जानें।।

एक नारी स्वर : स्वर्ण थाल में नाना व्यंजन, द्वार-देहरी से सट के।
मैं तो लेकर खड़ी कटोरे में विशुद्ध पायस भर के।।

पति-पत्नी : हम पति-पत्नी मनोयोग से शुद्ध नीर लाये भरकर।
कांस-कलश को कर में थामे, नारिकेल धारे उस पर।।

एक नारी : मेरे पग में स्वर्ण घूंघरू, चुनरी पर स्वस्तिक के चिह्न।
केशर, मिश्री रजत-थाल में, मेरी मुद्रा प्रमुदित भिन्न।।

एक पार्श्व-स्वर : तिष्ठो प्रभु! निर्मल जल आहार,
आओ भगवन्, लूं पद-पखार।

---

१. चन्दना-प्रसंग—एक कथानक के आधार पर।

दूसरा : हो जाऊँ धन्य, प्रभु रुकें द्वार,
भव-सागर से लेंगे उबार।

तीसरा : भोजन यदि ले लें प्रभु उदार,
सुपमित करुणा से लें निहार !

एक साथ बहुत से स्वर (एक के बाद एक) :
क्यों निराहार ? प्रभु निराहार ?
क्या जतन करें ?
क्या लगन करें ?
कैसे हो पूर्ण अभिग्रह ?
क्या है काल-लब्धि का आग्रह ?

पार्श्व स्वर : अकस्मात् गूँजा जय-ध्वनि से कौशाम्बी का जन-पथ।
जहाँ रुका था दास-हाट से आकर सेठ धनावह का रथ।

[सारे नागरिक अत्यन्त व्याकुल हैं, कि अचानक स्वर गूँजते हैं।]

सामूहिक स्वर : जय सती चन्दना
जय सती चन्दना
कोदों के दानों से सध गया आहार
दासी के हाथों, प्रभु ने लिया आहार
जय जय जयकार—प्रभु की जय जय जयकार
जय सती चन्दना जय जय जयकार
जय प्रभु वर्धमान जय जय जयकार

एक स्वर (घोषणा) :
"आहार अभिग्रह—तप का आग्रह"

पार्श्व-स्वर : (जैसे भगवान की अंतरात्मा की गूंज)
राजकुमारी के कर कोदों, पाँवों बेड़ी, दासी वेश।
देहरी के अन्दर बाहर हो, हँसती-रोती हो बिन केश।

[दासी वेश में चंदना का प्रवेश। पैरों में बेड़ी, मुंडा हुआ सिर, आँखों में आँसू, होठों पर मुस्कान, हाथ में सूप। वह घिरी हुई है नर-नारियों से, जो जय जयकार की ध्वनि करते प्रवेश करते हैं।]

नागरिक : देखो तो अद्‌भुत संयोग, रानी-दासी का क्या योग ?
(चन्दना अपनी कहानी कहती है। नृत्य-अभिनय)

चन्दना[1] : राजकुमारी वैशाली की, चन्दन मेरा नाम।
मदनोत्सव का संयोजन था मेरा अग्रिम काम॥

---

1. चन्दना-प्रसंग—दूसरे कथानक पर आधारित।

चन्दना : देह कहाँ फूल-पावन ? देह-धर्म त्याग जियूं,
आत्म-धर्म विकसित कर, वीर-प्रभु-शरण गहूँ।
नारी अभिशप्त जहाँ, जीवन वहाँ अर्थहीन,
वीर-वचन मंत्र जपूं, रहूँ सदा निजाधीन।

सामूहिक स्वर : जय जयकार—जय जयकार
खुले मुक्ति के मंगल द्वार
पीड़ित मानव का उद्धार
शापित नारी का उपकार
समता का संस्पर्श अपार
जय जय, हे प्रभु, जय जयकार

(सबका प्रस्थान)

केवलज्ञान

सातवाँ दृश्य

[कालपुरुष और कथावाचिका का प्रवेश, नृत्याभिनय]

पार्श्व-स्वर १ :

तपोवन के संयम को साधते, मानवता के हित, अभिग्रह ठानते
बारह वर्ष तक किया आरोहण तपस्या के पर्वत का।
तब योग के दुर्गम दिव्य शिखर पर
उद्भासित हुआ सूर्य केवलज्ञान का।
उजागर कर गया एक साथ उस सबको
जो था, जो है, और जो होगा।

पार्श्व-स्वर २ : संध्या का समय, ऋजुकूला नदी तीर
स्फटिक शिला पर विराजे थे महावीर।
एकात्म हो गये वे स्वयं की दीप्ति से
उजागर था सब जो जाना निज प्रतीति से।
अभिन्न एक-रूप जैसे दीपक की लौ और आलोक
ज्ञान की संचेतना में झलक उठे तीनों लोक।

दोनों स्वर : देवताओं ने की पुष्प वर्षा
मनुष्यों ने किया जय-जयकार
प्रतीक्षा हुई त्रैलोक्य में व्याप्त
कि ध्वनित होगा अनहद नाद का विस्तार।

पार्श्व से गायन : राजगृही नगरी में भगवान
पधारे, गूँजा जय जय गान
(नगर-नागरिकों का नृत्य करते प्रवेश)

खिला विपुलाचल पर मधुमास
फलवती होगी जग की आस

सुसज्जित समवसरण आगार
शान्ति-समता-आश्रय-साकार

o

गगनचुम्बी शुभ मानस्तम्भ
नमित जिसके पद में सब दम्भ

o

देव, नर, नृप, पशु जीव अपार
खुले सब के हित प्रभु के द्वार

o

मात्र दर्शन हरता दुख-शोक
आत्म-सुख से प्लावित चहुँ लोक

o

प्रश्न आकुल प्राणी के स्वयं
सुलझते प्रभु-दर्शन माध्यम

पार्श्व-स्वर : किन्तु एक अपूर्व घटना थी
जो आश्चर्य चकित करती
विस्मय से भरती
लाखों श्रोताओं के हृदय को मथती
कि क्यों नहीं प्रभु की वाणी शब्दों में झरती ?
दर्शनों से मिलता था असीम आनन्द
किन्तु उत्सुक थे मानव
कि मिलें, आचरण के छन्द

(नर-नारियों का प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : समाधान झलका इन्द्र ही के मानस में
'इन्द्र' जो मानव की असीम शक्ति का द्योतक
अथवा प्रकृति के गूढ़ मर्म, अदृश्य का संयोजक
प्रतीक चरम ऊर्जा का,
कल्पनातीत वैभव और सामर्थ्य असाध्य का

[इन्द्र का प्रवेश]

इन्द्र : वर्धमान, केवलज्ञान प्राप्त कर, तिष्ठित मौन
शब्दों के माध्यम से, गहन अनुभूति तत्त्व
जनता के मानस में,
पहुँचाये कैसे ? कौन ?
जिसमें हो, भाषा के प्रेपण की अद्भुत सामर्थ्य
लौकिक व्यवहार-दृष्टि, रसमय वर्चस्व,

[इन्द्रभूति गौतम का प्रवेश]

इन्द्रभूति (स्वगत) : यह राजगृही नगरी अद्भुत
कण कण में चमक रही विद्युत् !
इस रजत-ज्योति का ध्रुव प्रपात
उमगाता उर, रोमांच गात
(छन्द परिवर्तन)
मेरे मन की शंका मूल
इस भू पर होगी निर्मूल

[वायुभूति, अग्निभूति और दो शिष्यों का प्रवेश। वे सब इन्द्रभूति को प्रणाम करते हैं]

इन्द्रभूति : हे वायुभूति ! हे अग्निभूति !
हो रहा यज्ञ का शुभ मुहूर्त
सोमिल के इस अनुष्ठान में
पहुँचूंगा मैं कुछ समय बाद
पहले देखूं ज्योति-किरण के
पथ में प्रस्तुत, क्या आह्लाद !

(इन्द्रभूति को छोड़ सबका प्रस्थान)

इन्द्रभूति : आया था एक विज्ञ विप्रवर आश्रम में
पूछता था मर्म अर्थ, निहित गूढ़ छन्द में
"त्रैकाल्यं, द्रव्यषट्कं, नव-पद-सहितं,
जीवषट्कायलेश्या: । पंचान्ये चास्तिकाया

व्रत-समिति-गतिर्ज्ञान-चारित्र-भेदाः।"
ऐसा गम्भीर वाक्य पढ़ा था, न गुना था
अर्थ क्या बताता ?
निज दम्भ जो तना था
चुभ रहा है वाक्य जैसे मर्म में विंधा हो बान,
"अर्थ दे सकें बस तत्त्व-ज्ञानी वर्धमान"

[जनसमूह का प्रवेश गाते-नाचते, झाँझ बजाते आते हैं और इन्द्रभूति के सामने से गुज़र जाते हैं]

जनसमूह : चलो रे भइया दर्शन को महावीर के
मांगो रे भइया वाणी का अमृत-नीर रे

(गाते गाते स्वर तीव्र—चरण-गति में हर्ष-उन्माद)

इन्द्रभूति : है यहीं वीर का समवसरण ?
क्या जनता जाती वहीं उमड़ ?
यह क्या अनुभव, इन्द्रियातीत !
मेरी पग-ध्वनि में वही गीत

(इन्द्रभूति के चरण जनसमूह की चरण-ध्वनि में मिलकर स्वयं उसी दिशा में चल पड़ते हैं—प्रस्थान)

[इन्द्रभूति उसी गति में चलते चलते पुनः प्रवेश करते हैं—मानस्तम्भ के सम्मुख दोनों ओर से जनसमूह का प्रवेश]

[इन्द्रभूति को इंगित करता]

एक ओर का जनसमूह :
ये गौतम आज पधारे क्यों ?
ये धरा गगन हैं स्तंभित क्यों ?

दूसरी ओर का जन समूह :
ये गौतम, यज्ञ-विधान कुशल
यदि वाद-विवाद करें इस पल

दोनों ओर की जनता : (एक साथ)
तब रह न सकेंगे 'वीर' मौन
(शून्य की ओर देखती—वर्धमान को सम्बोधित करती गाती हुई)
प्रभु अमृत-वाणी बरसाओ
जन-जन का मानस सरसाओ

(उक्त दोनों पंक्तियों को दोहराते-दोहराते जनता के स्वर धीमे—शान्त)

[स्तब्ध शान्त वातावरण। स्थिर मुद्रा में इन्द्रभूति व जन-समूह]

महावीर-वाणी : (गूँज में)
इन्द्रभूति गौतम ! तुम आ गये भन्ते !

इन्द्रभूति : (चौंककर)
हाँ, आ गया। स्वीकार हो प्रणाम, दुख-हन्ते !

जनता : (हर्षित हो)
जय गुरु गौतम, जय महावीर
मेघ-ध्वनि वाणी त्राणदायी नीर।

इन्द्रभूति : (स्वगत)
नाम कैसे जान गये ? अद्भुत सामर्थ्य !
पर विख्यात मैं इतना कि,
न जानते तो होता आश्चर्य।

(पुनः वातावरण शान्त)

महावीर-वाणी (गूँज)
गौतम ! तुम्हें शंका, अजीव-जीव तत्त्व की
आत्मा की सत्ता, ध्रौव्य, व्यय रूप अर्थ की

इन्द्रभूति (स्वगत) : शंका अन्तर्मन में मेरे, प्रभु ने कैसे झाँका
सूक्ष्म विन्दु मेरे मंथन का, किस प्रकार आँका ?
(प्रकट में)
हे महावीर ! हैं धन्य आप, पढ़ ली मेरी उर-आशंका
(अत्यन्त विनीत स्वर)
अब कृपा करें, दें समाधान, मानस-तरणी को पार लँघा।

जनता की हर्ष-ध्वनि :
धन्य गुरु गौतम, हे धन्य महावीर !
भंवरों से नाव तिरी, पहुँच रही तीर

महावीर वाणी : (गूँज) जीवात्मा का अस्तित्व ध्रौव्य
इन्द्रियातीत बन, परख सौम्य !

इन्द्रभूति : (अति विनीत स्वर)
कैसे अति-ऐन्द्रिक शक्ति वरूँ ?
निज आत्मा का साक्षात् करूँ ?
(नमित मुद्रा में)
जीवन-पथ भास्कर ! अनियारे !
कण कण अंतर के उजियारे !

हे वीतराग ! सर्वज्ञ देव !
हूँ शरणागत तुम चरण-सेव

पार्श्व-स्वर : वेदविद् विप्र यज्ञ कामी
धुरन्धर इन्द्रभूति नामी
हुए प्रभु के पद अनुगामी
मुख्य गणधर गौतम स्वामी
वीर प्रभु के तात्त्विक उपदेश
बने गौतम-मुख सरल संदेश ।

(इन्द्रभूति—भगवान के गणधर का आसन ग्रहण करते हैं)

पार्श्व-स्वर सामूहिक तथा मंच से जनता के स्वर :

(पूजा-ध्वनि)

वीर-हिमाचल तैं निकसी,
गुरु गौतम के मुखकुंड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली,
जग की जड़ता सब दूर करी है ।।

(गाते एवं गौतम को प्रणाम करते हुए जनता का प्रस्थान
अन्त में गौतम का प्रस्थान)

(अन्तराल द्योतक वाद्यध्वनि)

[वाद्य-ध्वनि पर जनता का प्रवेश । राजा श्रेणिक, महारानी चेलना, चन्दना, राजकुमार अभय, मेघकुमार आदि का प्रवेश । वे भगवान की उपदेश सभा में आये हैं। गौतम गणधर द्वारा भगवान की वाणी सुनने की प्रतीक्षा में हैं । गौतम का प्रवेश । वे गणधर का आसन ग्रहण करते हैं]

गौतम : भगवान के मनन को चित्त में उतारा है
अन्तर और बाहर, उजियारा-उजियारा है
श्रेणिक महाराज ! रानी चेलना ! सब जन सुनें
सारभूत सात तत्त्वों का मनन करें
सात तत्त्व ये हैं—
जीव, है आत्मा या चेतन
पुद्गल है अजीव जड़, जो लेता आकार
दोनों का मिलना है जीवन,
जो कर्मों के आस्रव का द्वार ।

आस्रव के द्वार से प्रवाहित जो कर्म,
आत्मा को कसना, है कहलाता बन्ध
संयम यदि साधे, सब कर्मों का रुकना,
है संवर निर्द्वन्द्व ।
बन्ध को काटना भी व्यक्ति की क्षमता है
घटते जब पूर्व कर्म, होती है निर्जरा
तप से जब प्राणी के कटते सब कर्म-बन्ध
मोक्ष है वही, चिदानन्द वही स्वच्छन्द ।

श्रेणिक : नमित है श्रेणिक यह चरणों में गणधर के
भंते ! क्या मार्ग इस मोक्ष-सुख प्राप्ति का ?

गौतम : उक्त सात तत्त्वों पर सच्चा श्रद्धान,
नींव मोक्ष-स्थान की ।
आत्मा और पुद्गल के भेद का विशुद्ध भान
बाट मोक्षज्ञान की ।
सच्चे ज्ञान, दर्शन युक्त आचरण का विधान
प्राप्ति मोक्ष-यान की ।
आचरण की युक्तियों के बीज-मंत्र राजन् !
ध्वनित वीर-वाणी में, मेघ-छन्द गर्जन ।

महावीर-वाणी (गूंज में) : सव्वे पाणा ण हंतव्वा ।

गौतम : किसी प्राणी को आहत मत करो ।

गूंज : सव्वे पाणा ण अज्जावेयव्वा ।

गौतम : किसी प्राणी को पराधीन मत करो ।

गूंज : सव्वे पाणा ण उद्दवेयव्वा ।

गौतम : किसी प्राणी के प्राणों का वियोजन मत करो ।

गूंज : कोहो ण सेवियव्वो ।

गौतम : क्रोध का सेवन मत करो ।

गूंज : लोभो ण सेवियव्वो ।

गौतम : लोभ का सेवन मत करो ।

गूंज : न भाइयव्वं ।

गौतम : भय मत करो ।

गूंज : ण मुसं बूया ।

गौतम : असत्य मत बोलो ।

गूंज : बंभचेरं चरियव्वं ।

गौतम : ब्रह्मचर्य का आचरण करो।

गूंज : अदिण्णं पि य णातिए।

गौतम : विना दिया मत लो।

गूंज : अप्पणो गिद्धिमुद्धरे।

गौतम : आसक्ति को छोड़ो, संग्रह मत करो।

गूंज : साहरे हत्थपाए य, मणं सव्विंदियाणि य।

गौतम : हाथ, पैर, मन और इन्द्रियों का अपने आप में समाहार करो।

पार्श्व-स्वर : वाणी की गंगा में स्नान कर प्रफुल्लित
दीक्षित हुए राजा प्रजा, मानव मुक्ति के निमित्त।

हर्ष-ध्वनि : धन्य···धन्य···धन्य···कृतार्थ हुए, प्रभु!

रानी चेलना : चेलना नमित प्रभु! वीतराग-चरण में
क्या राजरानी दीक्षित हो, रह सकती शरण में?

रानी मृगावती : मृगावती, नमित श्री-चरण में
निराकुलता का पाठ पढ़ूँ, लें प्रभु, शरण में।

चन्दना : वीर-प्रभु! दीक्षित तो सदा से, मैं मन से
चन्दना की वन्दना, स्वीकार करें शरण में।

गौतम : प्राणी मात्र, समता, स्वतन्त्रता, सुख खोजता
नारी का गौरव, स्वयं मुखरित हो बोलता
नारी हो दीक्षित, यह प्रभु का आदेश है
पुरुष की समान-धर्मा, क्षमता में विशेष है।

मेघ और अभय : राजपुत्र अभय और मेघ का प्रणाम लें
मुक्ति हेतु श्रमण-धर्म दीक्षा का मन्त्र दें।

गूंज : 'तथास्तु' 'तथास्तु' 'तथास्तु'

(चेलना, मृगावती, चन्दना, अभय, मेघ दीक्षा लेने की मुद्रा में)

श्लोकपाठ :

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—
अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि···

(सब का प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : निरक्षर वाणी सब दिशि व्याप्त
हृदय-तल छू हरती संताप
मागधी, अर्धमागधी वचन
लोक-भाषा में ही श्रुत-मनन
विविध प्रान्तों में धर्म-विहार
सम्मिलित जन-समुदाय अपार।
कच्छ, कुरु, कोशल, काशी, अंग,
मल्ल, पंचाल, आदि मरु, वंग,
मलय, किष्किन्धा और विदर्भ,
वीर के धर्म-चक्र अनुवर्त्त।

आठवाँ दृश्य

एक स्वर : मनुष्य क्यों आकुल और त्रस्त होते जीवन में ?
दुःखों के मूल कारण हटें युग-युगान्तर में
कैसे सुलझायेगा गुत्थियाँ, विकासोन्मुख सभ्यता की,
मानव भविष्य का ?
स्पष्ट ज्ञान-दर्शन में समाहित कर तीन काल
आचरण का पंथ और चिन्तन की दिशा को—
प्रशस्त करते भगवान
अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह का सूक्ष्म बोध देते।

दूसरा स्वर (घोषणा का सा) :
मानव की प्रवृत्तियाँ जब हो उठीं अमानुषी
हिंसा की लपटों में लिपटी थी वैशाली।

(युद्ध-सूचक संगीत)

युद्ध की विभीषिका ताण्डव-नृत्य कर उठी
आक्रमण-कर्ता था मगधराज कुणिक—
मगध का शासक, पुत्र श्रेणिक बिम्बसार का,
दुर्मद दौहित्र स्वयं चेटक महाराज का,
रानी चेलना की जो कोख का था जाया।
स्वयं वृद्ध चेटक को होना पड़ा युद्ध-रत
नाना के ध्वंस को जब कुणिक हुआ उद्यत
साथ लेकर भाईयों को, टूट पड़ा भाईयों पर
अस्त्र शिलाकंटक, वीभत्स शस्त्र रथ-मुसल

(युद्ध-दृश्य—राजा चेटक और कुणिक व अन्य योद्धा संग्राम-भूमि में। भयानक चीत्कार आदि ध्वनियाँ। अन्त में सारे पात्र स्थिर मुद्रा में)

वियतनामी युद्ध का एक पूरा-पूरा युग
तड़पाता मानव को विकल, भयभीत त्रस्त।

दूसरा स्वर : चन्द्रमा की धरती पर चरण उतार दिये
ग्रह-नक्षत्रों की उड़ानों के अभियान
किन्तु हाय, मानव ! धरती के मानव को
दे न सका त्राण, प्राण-रक्षा का आत्मदान !
एक ओर आकुलता, दुःख और पीड़ा की चरम सीमा
दूसरी ओर मित्रता का स्वांग और संस्कृति की भंगिमा।

(सारे पात्र अलग-अलग मुद्रा में स्थिर)

दोनों स्वर : सुनो एक वार फिर वही महावीर-मंत्र
रक्षा का कवच और करुणा का महामंत्र।

(शान्त वातावरण ...... स्तब्ध)

महावीर वाणी (गूंज में) :
जीववहो अप्पवहो, जीव दया अप्पणो दया होई

गौतम : किसी भी प्राणी का वध करना अपना वध करना है।
दूसरे पर दया करना, अपने को सुखी करना है।

गूंज : आरंभजं दुक्खमिणं

गौतम : सभी दुःख हिंसा से उत्पन्न होते हैं।

गूंज : सव्वे सिं जीवियं पियं

गौतम : सभी को अपना जीवन प्रिय होता है।

गूंज : आय तुले पयासु

गौतम : सभी प्राणियों को अपने समान समझो।

गूंज : मुज्वेज्ज कमाई सव्व दुक्खाणं

गौतम : प्राणियों के वध का अनुमोदन करने वाला मनुष्य कभी भी दुःखों से नहीं छूट सकता।

गूंज : से हु पन्नाण मंते वुद्धे आरंभो वरए

गौतम : जो हिंसा की प्रवृत्तियों से विलग है, वही बुद्ध, ज्ञानी है।

o

निर्भय हो जीवन, निराकुल हों जगत्प्राण,
अहिंसा हो मन में, सधे वचन-तन से, तो
दुःखों और कष्टों से मिल जाये पूर्ण त्राण।

(पात्रों की स्थिर मुद्रा में परिवर्तन—करुणा, दया-क्षमा के भाव मुख पर)

पार्श्व-स्वर : महावीर स्वामी के ध्यान और चिन्तन में।
लोकहित मंथन से अनेकान्त झलका।
मान्यताएँ अलग अलग भिन्न भिन्न दृष्टियाँ
अनेकान्त समाहार सबका करेगा
ईर्षा और कलुषता मन की हरेगा।
सत्ता यदि तत्त्वों की, वस्तुओं-स्थितियों की
एक ही अपेक्षा से दूसरी को समझें
वाणी की भंगिमा का रहस्य यह जान जायें,
कोई तथ्य, कोई सत्य, एक साथ एक क्षण
कहा नहीं जा सकता पूरी समग्रता से
दूसरे की दृष्टि को समझें यदि सप्रयत्न
जगती का वाद-द्वन्द्व समन्वय में पुष्पित हो
जीवन का सहज रूप समरस में पुलकित हो।

(शान्त-स्तब्ध वातावरण)

महावीर वाणी (गूंज में) :
सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्त भंगं आदेस वसेण संभवदि ॥
सिय अत्थि, सिय णत्थि, सिय अव तव्वा।

गौतम : सत् अस्ति रूप से है, नास्ति रूप से है और अवक्तव्य है।
प्रत्येक वक्तव्य सापेक्षता से है।

गूंज : एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान-नेत्रमिव गोपी ॥

गौतम : जिस तरह दही को मथ कर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, इसी तरह अनेकान्त पद्धति पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है, तो दूसरे को गौण कर देती है। उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती।

[दोनों दल जो उत्सुकता से उपर्युक्त वचन सुन रहे थे, उल्लास भरी वाद्य-धुन पर परस्पर मिलते है—प्रसन्न हो समन्वय नृत्य करते हैं।

(सबका प्रस्थान)

●●●

लूटें, खसोटें और भर लें तिजोरियों में
चमचमाती चाँदी
तकनीकी दुनिया हो
हुक्मों की बाँदी।

[आधुनिक पुरुषों के दूसरे दल का प्रवेश, इसमें सिनेमा-दलाल, डाक्टर, इंजीनियर, आर्टिस्ट सब हैं।]

सिनेमा-दलाल : चाहिए क्या सुन्दरि ! बनोगी फ़िल्म की हीरोइन ?

डाक्टर : दीजिएगा नब्ज़, गिनाइयेगा चौंसठ, बना दूँगा रूपवती।

इंजीनियर : कम्प्यूटर ले आऊँ ? छान डालूँ तरकीबें, पहुँचा दें आपको जो ख्याति के शिखरों पर।

आर्टिस्ट : 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कला का मन्त्र परम
सुन्दर का दर्शन है 'शिव की उपासना'
शिव की उपासना ही सत्य की आराधना।
सत्य की आराधना में किंचित् छुपाव नहीं
नग्नता, विरूपता, विद्रूपता सभी सही।

सारा पुरुष वर्ग : (एक साथ) ब्लैक ! ब्लैक ! ब्लैक !
यह लो। वह लो। सब लो !
भागो। मारो। लूटो। खाओ।
मौज ! मौज ! और मौज मनाओ।

सभी स्त्रियाँ : (एक साथ) मोटर कार, हवाई जहाज़।
पिक्चर, होटल, खाना-पीना।
मौज ! मौज ! मौज !

पुरुष व स्त्रियाँ : (एक साथ) पकड़ समेटा। रक्खो-रक्खो।
भरलो भरलो। ले-लो ले-लो।
यह भी मेरा। वह भी मेरा।
यह भी चाहूँ। वह भी चाहूँ।

नवयुवक-युवतियाँ : (अत्याधुनिक वेशभूषा में)
कुछ नहीं चाहिए, नहीं चाहिए—
यह भी छोड़ा—वह भी छोड़ा
धन की अति से तंग आ गये
नियमों में बँध ज़ंग खा गये
हमें न अब कुछ माथापच्ची
मन की मौज संगिनी सच्ची

पुरुष-समूह : (हर्ष से गद्‌गद्)
आहा हा हा हा हा !
अमृत की बूंदें बरस रहीं
तपती उर-भू को सरस रहीं
ध्रुव तारा चमका मानस-नभ
इंगित करता शुभ मार्ग सुलभ।

हिप्पी-जन : अंतर का झरना किलक उठा
हम हल्के-फुल्के फूल खिले,
यह झंझा दिग्भ्रम दूर हुआ
भटकी नौका को कूल मिले।

(हर्ष वाद्य-ध्वनि के स्वर; मैत्री, प्रेम प्रफुल्लता का नृत्य)

सब मिलकर : हम महावीर के हैं अनुगत
हम अनेकान्त-वादी सहमत

(गायन)

सुख बरसे जीवन सरसे; जीवन जीने का मंत्र जपें, हरषाएँ
तप, त्याग, अहिंसा, सहज धर्म अपनाएँ
समता, समानता, प्रेम-प्यार बरसाएँ
जीवन जीने का मंत्र जपें, हरषाएँ।

(गायन-नृत्य करते करते प्रस्थान)

• • •

निर्वाण

दसवाँ दृश्य

[आलोक प्रपात एवं कान-युग्म और कथा-वाचिका के नृत्य-अभिनय द्वारा दृश्य-अंकन]

पार्श्व-स्वर : ज्ञान-ज्योति से सारे ब्रह्माण्ड को जगमगाते
सारे युगों और कालों में उतरते, विचरते, थाह पाते।
अमरत्व की ओर अग्रसर, मुक्ति के सोपानों पर चढ़ते,
महावीर रहे मानव—मानव—सम्पूर्ण मानव;
मानव की आत्मा के चरम विकास-पुञ्ज,
और साथ में ही मानव की देह-सीमा में बद्ध।
पुद्गल और अचेतन के अणुओं से उन्मुक्त करते
आत्म-तत्त्व की मूल संरचना को,
निर्वाण के क्षणों की ओर आरोहण करते।

दूसरा स्वर : संध्या की वैरागी लालिमा,
उतर गयी कार्तिक की तारों भरी श्यामलता में,
चतुर्दशी के चाँद को उपग्रह की ओट लिये।
प्रभात की किरणों में घुल-मिल
वह उदित होने को उद्यत हुई कि,
वीर प्रभु का तेज-पुञ्ज जगमगा गया, चारों दिशाएँ—
आलोक ही आलोक—प्रकाश ही प्रकाश—
प्रकाश में प्रकाश के प्रतीकों का प्रतिरूपण—जगमग आरती
तीनों लोकों में झिलमिला उठी, दीपों की पाँति-पाँति।

पहला स्वर : हुए मोक्षगामी प्रभु।
चर-अचर विह्वल।
गौतम गणधर का
ज्ञान-राग चंचल।

मानव का हृदय
कैसे होता अचल
समझ कर भी मर्म
प्राण-सत्व था विकल।
देव, इन्द्र, सुर, असुर, मानव-जन
ज्योति-दीप थामे,
नयनों में हर्ष, अश्रु एक साथ भरते
जय जय-कार करते—
लेते पुण्य-सरिता में अवगाहन।

[नृत्य-नाटिका के सारे पात्र सामूहिक रूप में दीपज्योति हाथों में थामे मंच पर प्रवेश करते हैं और स्तोत्र-पाठ करते हैं]

गायन स्वर (सामूहिक) :

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।

पूर्ण पटाक्षेप

वीतराग

मंच-रूपक

वीतराग

पहला दृश्य

(वाद्य-संगीत में प्रभात के स्वर। पार्श्व में मंदिर में प्रवेश करते समय श्रावक गणों द्वारा घण्टा-ध्वनि करने की आवाज। मंच पर विविध प्रान्तों की वेष-भूषा में नर-नारियों का आना-जाना जैसे मंदिर जा रहे हों। धीरे-धीरे छायाचित्र में मंदिर का शिखर उभरता है और मंच पर आते-जाते नर-नारी मंदिर की ओर मुख कर खड़े हो जाते हैं—स्वर उभरते हैं।)

पार्श्व स्वर : दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतु ।
दुग्धाब्धि-फेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी,
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानम् ।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-
धामर्द्धिवर्द्धित-महामुनि-सेव्यमानम् ।
विद्याधरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य-
पुष्पांजलिप्रकरशोभित-भूमिभागम् ।।

णिस्सही, णिस्सही, णिस्सही,
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु
जय हो, जय हो, जय हो···जय महावीर स्वामी की जय···
जय महावीर की जय···
जय पार्श्वनाथ भगवान की जय···
जय श्री शान्तिनाथ भगवान की जय···
नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु···

(मंच पर के नर-नारी धीरे-धीरे चले जाते हैं।)

(वाद्य अन्तराल)

तीनों एक साथ : अरी मंजुश्री, ओ गुणप्रिय ! यहाँ आँखें विस्फारित कर प्राची को क्या निहार रही हो—कहाँ समय है आश्चर्य में डूबे रहने का? जल्दी आओ—चलो राजा के प्रासाद की ओर। नगर भर में समाचार हिलोरें ले रहा है कि रानी त्रिशला के जिज्ञासु चित्त का समाधान करने के लिए आज विशेष सभा आयोजित है। विद्वद्गण, ज्योतिषाचार्यों की उपस्थिति तो है ही, साथ में जिज्ञासा का समाधान स्वयं राजा करेंगे—

गुण० और मंजु : और हमारे जिज्ञासु चित्त का समाधान ?

सुमति : तुम्हारे जिज्ञासु चित्त का ? क्या कह रही हो ? क्या महारानी त्रिशला की भाँति तुमने भी कुछ अचम्भे भरी अनुभूति की है ? अपने पैर धरती पर ही रखो, आसमान में उड़ान भरने की कोशिश मत करो।

गुणप्रिया : अरे ! हम खड़ी तो धरती पर ही हैं, पर मन सचमुच आकाश के ओर-छोर तक फहर रहा है। हाँ, क्या कहा तुमने ? 'महारानी त्रिशला की जिज्ञासाओं का समाधान राजसभा में हो रहा है।' चलो, तुम्हारे साथ चलते हैं राजा की सभा में—हमारा हृदय भी वहीं जाकर विश्रान्ति पायेगा—अभी मत पूछो कि हमने क्या देखा और हमें कैसा लग रहा है !

(बहुत-सी आवाजें स्त्री और पुरुषों की—'महाराज सिद्धार्थ की सभा में चलो'—जल्दी चलो—नागरिकों का प्रवेश, बातचीत करते हुए)

वार्ता स्वर : घोषणा है कि राजप्रासाद में 'स्वप्नफल-दर्शन सभा' आयोजित है। महारानी त्रिशला ने आश्चर्यजनक और अद्भुत स्वप्न देखे हैं।

: क्या···सपने ?

: रानी त्रिशला ने ?

: कितने ?

: सोलह।

: चौदह···

: ओह···सोलह या चौदह—

: हाँ ! तो उसका अर्थ बतायेंगे राजा सिद्धार्थ।

: किसी ज्योतिषी से क्यों नहीं पूछते महाराज ?

: अरे ! महाराज तो स्वयं महान् ज्ञानी हैं।

त्रिशला : अभिनन्दन करती हूँ उपस्थित प्रियजनों का और महाराज का। महाराज ! कल रात्रि के मध्य-प्रहर के उत्तरार्ध में अत्यन्त मनोहारी स्वप्न मेरे मानस-पट पर चित्रित हुए। मेरा चित्त उसी समय से एक अनिवर्चनीय अनुभूति से आह्लादित है।

सिद्धार्थ : असाधारण और अर्थविभूषित स्वप्न-शृंखला किसी विशेष घटना के आगमन की सूचक होती है। मध्य-रात्रि के उत्तरार्ध में महारानी को स्वप्न दिखने का अर्थ है कि महारानी की कोख में किसी विशिष्ट पुण्यात्मा ने प्रवेश लिया है। प्रिये ! क्रम से अपने स्वप्नों को बताती जाओ।

त्रिशला : महाराज ! प्रथम स्वप्न में झूमता—चार-दन्त वाला ऐरावत गजराज दिखाई दिया।

सिद्धार्थ : महारानी ! गजराज महानता का प्रतीक है। चार दाँत वाले गजराज से अर्थ है कि आने वाला जीव, चार प्रकार के धर्म को कहने वाला होगा। वे धर्म हैं—श्रावकधर्म, श्राविकाधर्म, साधुधर्म, साध्वी-धर्म।

सभासद : धन्य, धन्य...

त्रिशला : महाराज ! दूसरे स्वप्न में धवल वृषभ को देखा।

सिद्धार्थ : रानी ! वृषभ बीज बोने का साधन है। गर्भ में स्थित बालक धर्म-प्रवर्तक यानी बोधि-बीज बोने वाला होगा।

हरवाहे : धन्य—धन्य ! वृषभ शुभ चिह्न है ही, महाराज—

त्रिशला : महाराज ! तीसरे स्वप्न में चपल शरीरी सुघड़ गतिमान गर्जन करता सिंह दिखाई दिया।

सिद्धार्थ : प्रियकारिणि ! सिंह पराक्रम और अपार ऊर्जा का द्योतक है। जिस प्रकार वनराज सिंह अपने पराक्रम और शक्ति-बल से सारे आक्रमणकारियों को पराभूत करता है, उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ में स्थित जीव इस संसार-वन में अपने आत्मबल से कर्म रूपी शत्रुओं को पराजित करेगा।

पंडित स्वर : धन्य महाराज, धन्य ! गरजते सिंह का स्वप्न में आना आत्मबल ही प्रकट करता है।

त्रिशला : महाराज ! अगले स्वप्न में कमल पर विराजमान लक्ष्मी के दर्शन हुए।

सिद्धार्थ : प्रिये ! कमलासना लक्ष्मी का दर्शन मोक्षरूपी लक्ष्मी के वरण का प्रतीक है।

गुणप्रिया : (स्वगत सी) कमल पर विराजमान लक्ष्मी—अतुल ऐश्वर्य किन्तु भोग की कीचड़ से अलग ऊपर उठे कमल के फूल-सा।

त्रिशला : और महाराज ! मंदार पुष्प की मालाओं का युगल दिखा।

सिद्धार्थ : महारानी ! मंदार पुष्प की सुरभि की भाँति ही बालक की यश-सुरभि होगी जो तन और मन दोनों का ताप हरेगी।

सभासद : धन्य महाराज, धन्य—

त्रिशला : महाराज ! इसके अनन्तर चन्द्र और सूर्य दिखे।

सिद्धार्थ : बालक चन्द्रमा की भाँति कांतिमान् और सूर्य की भाँति ज्योतिर्मय होगा। वह दिवा-रात्रि, चिर काल तक, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला होगा।

त्रिशला : धन्य हुई महाराज ! स्वर्ण कलश का जोड़ा और ध्वजाएँ किन गुणों की प्रतीक हैं ?

सिद्धार्थ : कल्याणी ! स्वर्ण-कलश धर्म प्रासाद के शिखर हैं। पताकाएँ द्योतक हैं बालक की वायवी सूक्ष्म तत्त्व को प्रसारित करने वाली वाणी की। वह ध्वजा बन चारों दिशाओं में फहरायेगी।

त्रिशला : कृतार्थ हुई महाराज ! अब अगले स्वप्न में दीखे चपल मीन-युगल का भाव बताएँ।

सिद्धार्थ : विदेहदत्ते ! मीन-युगल संतति के सौरभ-विकास का सूचक है—और सूचक है प्रेरणात्मक शक्ति की चेतना का।

त्रिशला : धन्य हैं महाराज ! आपके सूक्ष्म-विवेक के प्रति नत हूँ—अब रहे कमल-दल-पूरित सरोवर और लहराता सागर।

सिद्धार्थ : सौभाग्यी ! कमल-दल पूरित सरोवर उस महान् आत्मा की स्थिर तरलता का प्रतीक है। लहराता सागर उसकी गगन-चुम्बी दिगन्तव्यापी क्षमता का।

त्रिशला : कुछ स्वप्न और शेष हैं महाराज ! रत्न-जड़ित सिंहासन और रत्नों की राशि—आकाशगामी विमान और नाग विमान—और अन्त में निर्धूम अग्नि। नहीं समझ पायी इनका अर्थ महाराज !

सिद्धार्थ : सुहासिनि प्रिये ! मैं कितना भाग्यवान हूँ कि मेरे गृह में ऐसे पुत्र का जन्म निर्दिष्ट है, जिसमें सारे उन लक्षणों का समावेश है, जो मोक्षगामी जीव के बालक की वर्चस्वता और प्रभुत्व का प्रतीक है। रत्न-राशि उसके जगमगाते गुण-रत्नों का सूचक। आकाशगामी-विमान देवों द्वारा उस जीव के पूजित होने को, और नाग-विमान

आकाश के देवों और धरती-धारक शक्तियों द्वारा उसकी वन्दना को प्रकट करते हैं। निर्धूम अग्नि वह तेजोमय ताप है जो कर्म से धूमायित आत्मा को कंचन काया प्रदान करती है।

त्रिशला : धन्य…धन्य…कृतार्थ…कृतार्थ। आज स्वजन, पुरजन और समस्त बन्धु-बान्धवों के समक्ष इस अपार सौभाग्य तिलक को धारण करती हूँ। और अंतरंग आत्मा से तीन लोकों की सुख और शान्ति के दायक परमात्म पद से सुशोभित जीव की जननी का गौरव वहन करने की सामर्थ्य का अनुभव करती हूँ।

प्रजागण : धन्य… धन्य…धन्य !…माता त्रिशला की जय।…माँ त्रिशला की जय।…महाराज सिद्धार्थ की जय।

(मंजुश्री, गुणप्रिया व सखियां क्रम से बोलती हैं)

मंजुश्री : इसीलिए मन में उमंग थी…

गुणप्रिया : तन-मन में पुलकित तरंग थी…

सुलक्षणा : प्राची में रवि-कलश सुसज्जित…

सुनैना : रजत-रश्मि श्री-फल से मज्जित…

चौथा दृश्य

(रीना और निताशा का मंच पर अभिनय, जैसे कल्पना-निद्रा से जगी हों)

रीना : ओह !…क्या सुन्दर दृश्य था मेरे मानसपट पर ! क्या मैं पुण्यात्मा हूँ ?

निताशा : अरी सुन सुन। ये ध्वनियाँ ! अभी मन्दिर में पूजा हो रही है।

पार्श्व स्वर : (सामूहिक पूजापाठ)

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुंडलपुर कन-वरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव-हरना ।।
नाथ मोहि राखो हो सरना ।।

ओं ह्रीं चैत्र-शुक्ल-त्रयोदश्यां जन्म-मंगल-प्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रीना : अरी तूने सुनी ये पूजा की पंक्तियाँ ! यह अर्घ्य भगवान महावीर के जन्म मंगल के लिए चढ़ाया जा रहा है। चैत का महीना, शुक्ला त्रयोदशी, मध्य रात्रि की बेला, हस्त उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र का

योग। पुण्य-मंगल-राग की ध्वनि त्रैलोक्य में गूंज उठी। त्रिशला की कोख से बालक वर्धमान का जन्म हुआ। भावनाशील प्राणी हर्ष से विह्वल हो उठे। कल्पनालोक में कवियों के स्वर पंखों पर उड़ चले। वैभव और सामर्थ्य के प्रतीक सौधर्म इन्द्र और कला-चतुर इन्द्राणी, त्रिशला देवी को सुखद निद्रा में सुला, बालक को अभिषेकमंगल मनाने भरत-खण्ड में स्थित मेरुपर्वत की पाण्डुक शिला पर ले गये।

(छायाचित्र में जन्माभिषेक का दृश्य)

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के)**

सुरनत मुकुट रतन छवि करें, अंतर पाप-तिमिर सब हरें।
जिनपद बंदूँ मन-वच-काय, भव-जल-पतित उधरन सहाय ॥

रीना : ओह नीलू ! देख रही है न। देवताओं के मुकुट-मंडित मस्तक बालक भगवान के चरणों में नत है। चरणों में झुके मुकुटों के रत्नों की दीप्ति ने अन्तस् का सारा पाप-तिमिर हर लिया। क्षीर-सागर से भर लाये एवं दूध, घी, दही तथा इक्षुरस से मिश्रित और कुंकुम, केसर व कपूर से सुवासित जल के १००८ रत्न-जड़ित स्वर्ण-कलशों से न्हवन हो रहा है बालक भगवान का। सुर-असुर, नर-नारी सब गा उठे हैं···

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के)**

सहस अठोत्तर कलसा प्रभु जी के सिर ढरे।

(बार-बार पंक्ति गायन)

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के, दूसरी ओर से)**

घननं-घननं घन घंट बजै, दृमदं-दृमदं मिरदंग सजै।

(घण्टों की ध्वनि)

गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ॥

निताशा : अरी रीनू प्रिय ! तू तो मुझे इस पृथ्वी पर रहते उन भव्य लोकों में भ्रमण करा रही है, जहाँ के दर्शन कर आत्मा, अंतस् के आनन्द से झूम उठती है। तूने ही सुनाया था न, कि जब बालक भगवान को स्नान कराने के बाद इन्द्राणी उनकी देह पोंछ रही थी, तो बालक के गाल बार-बार पोंछने पर भी उन पर जल-बिन्दु झलकते ही रहे। चकित हुई थी इन्द्राणी कि बूंदें क्यों नहीं पुछ रहीं ? पर वे पानी की बूंदें थीं कहाँ ? वे तो भगवान के दर्पण-तुल्य स्वच्छ निर्मल कपोल पर उसी के आभूषणों की चमक थी।

रीना : भगवान के शरीर का वर्ण था तपे सोने कुन्दन-सा दिव्य और उनके दायें तलवे पर था सिंह का चिह्न, जो उनका लक्षण-चिह्न माना गया है। शंख, कमल, धनुष आदि १००८ मांगलिक चिह्नों से युक्त था उनका सुभग तन! ···

निताशा : रीनू ! मुझे रमने दे अतीत में, मुझे ले चल बालक भगवान के दर्शन कराने कुण्डपुर ग्राम में। मैं उन चक्षुओं की कामना कर रही हूँ, जो बालक वर्धमान के वर्धन का दिग्दर्शन करने में समर्थ हों।

रीना : 'तथास्तु'। ये सच्ची भावनाएँ हम दोनों को त्रिशला माँ और राजा सिद्धार्थ के भवन में पहुँचाने में समर्थ हों।

(अन्धकार)

पाँचवाँ दृश्य

(रानी त्रिशला बालक वर्धमान को पालने में झुलाती हुई)

त्रिशला : **(लोरी के स्वर में)**

यैः शान्तराग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष - विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता॥

हाँ, ठीक ही तो कह रही हूँ···तुझ जैसे पुत्र को जन्म देने वाली मुझसे अधिक सौभाग्यशालिनी और कौन माँ हो सकती है? **(बालक की ओर निहारती हुई कुछ गंभीर होकर)** पर तेरा यह शांत राग··· मोह-माया से निर्लिप्त रूप····· तुझे हृदय से जब-जब भी लगाती हूँ न जाने क्यों वीतराग-तृप्ति की सी अनुभूति होने लगती है। लगता है जैसे विश्व के प्राणि-मात्र के स्पन्दन का नाद तेरी कोमल रोमावलि में गुंजरित है। यह पुलक···यह अनिर्वचनीय सुख की प्रतीति, और साथ ही साथ, यह कैसी विकल जिज्ञासा का उन्मेष जो कह रहा है कि अपलक तुझे निहारती ही रहूँ और अन्तर में

घुमड़ते सारे प्रश्नों का एक साथ उत्तर पा जाऊँ। मैं तुझसे पूछती हूँ मेरे लाल ! बता, मैं कौन हूँ, क्या हूँ ? कहाँ से मेरा आना हुआ और क्यों ? कहाँ जाना है मुझे ? यह सुख क्या है···और दुःख क्या है ? मुझे क्या करना है ? जन्म क्या है···मृत्यु क्या है ? और जीवन ?······(**सहसा, स्वर आत्म-संवादी न रहकर प्रत्यक्ष को सम्बोधित करने के ढंग में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी बीच महाराज सिद्धार्थ का प्रवेश। महाराज को देखकर**) महाराज आप ? स्वामी···प्राणनाथ···मुझे बोधिये। मेरे प्रश्नों का समाधान कीजिये।

सिद्धार्थ : प्रिये ! मेरे पुत्र तीर्थंकर वर्धमान को जन्म देने वाली गौरवशीला त्रिशले ! इन प्रश्नों का उत्तर देने ही वर्धमान का जन्म हुआ है। इस मुख छवि को देख ! अपने बालक के चिन्तनशील सरल नेत्रों में झांक···इसके शरीर से प्रस्फुटित होती हुई ज्योति के प्रकाश में अन्तर-रहस्यों को उद्भासित होते देख ! यह परम आत्मोन्मुखी बालक है देवि ! और स्वयंबुद्ध···स्वयंभू।

त्रिशला : धन्य हूँ मैं···धन्य हैं आप···मेरे मानस चक्षुओं के कपाट खुलते जा रहे हैं देव !···मैं वर्धमान का भविष्य देख पा रही हूँ। वह बढ़ते-बढ़ते आठ वर्ष का हो गया है। हमने उसे अन्य माता-पिताओं की भाँति विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास भेजा है।

(धीरे-धीरे मंच पर अँधेरा)

सिद्धार्थ : और जानती हो कि गुरु ने क्या कहा ?

(छायाचित्र में गुरु)

गुरु के स्वर : राजन् ! जिस प्रकार इस बालक के जन्मते ही आपके राज्य में धन-धान्य, सुख-सुषमा और यश-कीर्ति की वृद्धि सहज स्वयमेव हुई है, उसी प्रकार यह राजकुमार स्वयं-बुद्ध है। इसे ज्ञान देना किसी की सामर्थ्य नहीं है। यह तो स्वयं ज्ञान का पुञ्ज है। त्रैलोक्य में इसकी वाणी शाश्वत ज्ञान-गंगा बहायेगी, ज्ञान-रत्नों की वर्षा करेगी। यह बालक सन्मति नामकरण का अधिकारी है जन्म से।

(अँधेरा। साथ-साथ पार्श्व से श्रावकों के स्वर)

पूजा के पार्श्व-स्वर : (बार-बार)

जय वीर, महा अति वीर सन्मति नायक हो।
जय वर्धमान गुणधीर सन्मति दायक हो।

(स्वर ऊँचे उठते जाते हैं—वाद्य संगीत)

(धीरे-धीरे छायाचित्र हटकर मंच पर प्रकाश)

सिद्धार्थ : प्रिय वैशालिनि ! स्तम्भित हो तुम, आश्चर्य में डूबा हूँ मैं।

त्रिशला : महाराज ! मेरे दिग्दर्शी चक्षु दूर के क्षितिजों तक खुलते जा रहे हैं।...यह पालने में झूलता वर्धमान उद्यान में जा पहुँचा है। खेल रहा है अपने साथियों के साथ। महाराज...महाराज ! यह क्या ध्वनि सुन रही हूँ ?

(मंच पर अन्धकार और प्रकाश बारी-बारी से। सिद्धार्थ औ त्रिशला चकित मुद्रा में सुन रहे हैं बालकों की वे ध्वनियाँ जो पार्श्व से आ रही हैं।)

पुष्पक : ओ प्रभंजन ! ओ विमान ! ओ सत्यकी ! अरे सब इधर आओ, जल्दी दौड़ कर, देखो तो यह पेड़ आमों से लदा हुआ है।

प्रभंजन, विमान और सत्यकी (एक साथ) : आये...आये...

पुष्पक : अरे जोर से हिलाओ न पेड़ को, तो आम झड़ें.....पीले-पीले पके आम।

प्रभंजन : अरे पुष्पक ! जाओ, उधर से वर्धमान को बुलाओ। वह उधर के कोने में दूर बैठा है। वर्धमान ! वर्धमान ! !

पुष्पक : वर्धमान !...वर्धमान ! !...

विमान : अरे...हटो हटो ! हटो...हाय रे !

सत्यकी : यह क्या...(भयभीत होकर) नाग...नाग...

सब बालक : हाय नाग ! नाग...भयानक...अब क्या करें ? वर्धमान ! वर्धमान ! वहीं रहना दूर...फेंको पत्थर...मारो इसे...मारो...मारो...मारो...।

प्रभंजन : अरे यह क्या ? वर्धमान क्या कर रहे हो तुम ? नाग को हाथ से उठा लिया। अरे काटेगा यह। फेंको इसे। भागो...भागो...

विमान : अरे देखो तो ! वर्धमान ने ऐसे भयंकर फुँफकारते नाग को कैसे प्यार से उठा कर दूसरे स्थान पर रख दिया।

सत्यकी : और नाग ने कुछ नहीं किया...न काटा, न फुँफकारा। आश्चर्य... आश्चर्य...! !

प्रभंजन : देखो तो तनिक, कितनी सहजता और सरलता से नाग को उठाया है इसने। धन्य ! धन्य !

सब एक साथ : आज से हम वर्धमान को 'महावीर' कहेंगे। महावीर...कितना वीर है यह...कितना धीर, बलवीर...महावीर...

(अंधकार)

छठवाँ दृश्य

(पार्श्व से आते हुए 'महावीर-महावीर' शब्द गायन-स्वरों में परिवर्तित होते हैं। उनके साथ झाँझ-मंजीरा बजाते भक्त जन मंच पर प्रवेश करते हैं। ये भक्त-जन भील और मीनों के वेष में हैं।)

भक्तजन : महावीर महाराज...महावीर महाराज...करमों के फंदे छुड़ाय दो...
लाख चौरासी योनि में भ्रमतो...अब की पार उबार दो जी।
महावीर महाराज, मोरे स्वामी ! अब की बार उबार दो।
महावीर महाराज...करमों के फंदे छुड़ाय दो।
(अन्तिम पंक्ति कातर स्वर में गाते हैं और गाते-गाते प्रस्थान। इसी बीच निराशा और रीना का प्रवेश)

ओर थी ज्ञातृ नामक संघ से सम्मिलित अन्य संघों की। संघ के राजा थे चेटक वर्धमान के नाना। कपिलवस्तु मुख्यनगर था शाक्य-संघ का, जहाँ के राजा थे शुद्धोधन, महात्मा बुद्ध के पिता। मगध राजतंत्र के राजा थे श्रेणिक बिम्बसार जिनसे वर्धमान की मौसी चेलना का विवाह हुआ था।

नितासा : रीना ! यह तो अत्यन्त मनोरंजक प्रसंग ले आयी तू।

रीना : मनोरंजक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण। उधर थी वज्जि गणतंत्र की राजधानी वैशाली, जहाँ की गणतंत्रीय व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वाधीनता के बीज अंकुरित हो रहे थे और उसी के आस-पास थे राजतंत्रीय, पुरातनपंथी तंत्र ''जहाँ हो रहे थे यज्ञ—पशु-बलि देकर धर्म का क्रिया-काण्ड, दासों का क्रय-विक्रय, शूद्रों का उत्पीड़न।

नितासा : नारी-जाति की दयनीय दुरवस्था भी तो थी उस काल में ?

रीना : हाँ नीतू! उस युग की स्थिति को तू ठीक समझ रही है। काल तरंगों का एक छोर था ऊर्ध्वगामी और दूसरा रसातल को छूता हुआ। एक ओर थी प्रगतिशील खिलती हुई मानवता और दूसरी ओर थी वह सभ्यता और शासन-प्रणाली जो आदिम मनुष्य की जड़ता में प्रवाहमान थी।

नितासा : ओह ! रीना ! समझी। ऐसे ही युग में तो मानवता को संतुलित करने जनमे युग-पुरुष महावीर।

रीना : सच नितासा ! हम दोनों एक बार फिर उस अतीत में उतर रहे हैं। सूक्ष्म और स्थूल अतीत काल की ध्वनि-तरंगें हमें स्पर्श कर रही हैं।

(पटाक्षेप)

सातवाँ दृश्य

(इस दृश्य को ध्वनि व द्रष्टव्य के सामंजस्य से प्रस्तुत किया जाये। पार्श्व से कोलाहल के स्वर 'भागो' 'बचो' 'अरे कुचला' घोड़ा है या बिजली ?' '' 'अरे रोंद डाला उसे'—आदि। साथ ही साथ, घोड़े की कर्कश टाप और जोर से फू-फू साँस लेने और घोड़े के हिनहिनाने और थुर्राने की आवाज)

सैनिक : (कड़े स्वर में) महाराज चन्द्रदीप्ति की जय बोलो''झुका दो अपने मस्तक। डाल दो तलवारें-ढाल। फेंक दो तीर-तरकश। टेक दो

घुटने। बोलो, महाराज चन्द्रदीप्ति की जय।…हटो…हटो…क्या? तो ये लो……

(चाबुकों से पीटने की आवाज़, घोड़े की दौड़ का स्वर…कोलाहल …कोलाहल। कोलाहल धीरे-धीरे शान्त…और उसी में से उठते अस्पष्ट मंत्रों का उच्चारण—'ओं………स्वाहा')

पुरोहितगण : ओं…………स्वाहा। ओं………स्वाहा।

सेनापति : महाराजाधिराज चन्द्रदीप्ति की जय। दो हजार गाँव और अपने अधीन हुए। महाराज सुशोभित हों सम्राट् पद पर। महारानी सुनंदिनी की जय!…आरती उतारो जगमग!…ये आरती बढ़ाए महाराज के प्रभुत्व को, शत-शत गुना। बोलो, रानी सुनंदिनी की जय।

पुरोहित : दीर्घायु हों महाराज और महारानी सुनंदिनी। इस पवित्र यज्ञ की पूर्ण आहुति के लिए तत्पर हों सारे नगर-नागरिक, स्वजन-बन्धु। ध्यान देकर सुनो! हमने—धर्म के व्यवस्थापकों ने, आप सबके मंगल हेतु और महाराज चन्द्रदीप्ति की आयु की वृद्धि के लिए विजयी अश्व को भाले-छुरियों से घायल कर, धार्मिक विधि के अनुसार उसके प्राणान्त कराने का आदेश दे दिया है। हम उस विजेता अश्व पर विजय पाकर अपनी महत्ता और राज की महत्ता की पताका फहराने को एकत्र हुए हैं। आप धर्मप्राण जन हवन में आहुति देंगे उस मूल्यवान चर्बी की जो विजेता अश्व के शरीर से प्राप्त की गयी है। इस प्रकार मनुष्य का बल, पौरुष और सामर्थ्य स्थापित होंगे। वह चर्बी उष्ण रहते-रहते सोने के पात्रों में भर एक सौ एक मुख्य दास-दासियों द्वारा चाँदी की पालकी में रख कर लायी जा रही है।

(दौड़ कर आते घोड़े की पदचाप। एक संदेश-वाहक का प्रवेश)

संदेश-वाहक : (जोर की आवाज में) महाराज, स्वामिनी! अनर्थ हो गया।

(स्वाहा…स्वाहा की ध्वनियाँ एकदम शान्त)

चन्द्रदीप्ति : क्या हुआ संजय? शीघ्र बोलो।

संजय : महाराज! यज्ञ में विजयी अश्व को वे लोग भगा कर ले गये…

चन्द्रदीप्ति : (दबी-सी किन्तु धीर-गम्भीर आवाज में) ले गये…अच्छा हुआ। कौन ले गये?…कोई भी हों उन्होंने मुझे बहुत बड़ी यातना से बचा लिया।

पुरोहित : (क्रोधित) महाराज-महाराज···! ···क्या कह रहे हैं आप ? यज्ञ की पूर्णाहुति अब कैसे होगी ? ···किसने किया यह दुःसाहस ? (क्रोध, आवेश) और राजन् ! आप···आप···कह रहे हैं कि अश्व को ले गये यह अच्छा हुआ। ···क्षमा करें महाराज ! शूरवीरों के मुख से यह कायरता के शब्द शोभा नहीं देते। महान् विघ्न हुआ है यज्ञ में। इसका फल पूरी प्रजा के लिए अगमंलकारी होगा।

(मंच पर धीरे-धीरे अन्धेरा···राजा, पुरोहित आदि का प्रस्थान, केवल रह जाती है जनता—भीड़। जनता का शोर।)

एक : अमंगल···हाय ! ···क्या होगा अब !···

दूसरा : हमारा अमंगल क्यों होगा।

पहला : हाँ, हमारा अमंगल क्यों होगा ? ···राजा के यज्ञ में विघ्न हुआ है। वह न होंगे सम्राट्, तो न हों···हमें क्या ?

तीसरा : अरे पापी, कैसी बात करता है ? इतना बड़ा यज्ञ होना था। अरे, उस जीतने वाले घोड़े के साथ और भी तो कितने घोड़े, हिरन और बैलों की आहुति हो जाती। उनकी चीख-पुकार और छटपटाहट देख कर कितना मनोरंजन होता—जन्म भर याद रहता कि हम भी मानुष होकर जनमें हैं इन जानवरों को पूरा वश में करने वाले।

चौथा : हाय ! ···हाय···कैसा पत्थर है···तू मानुष कहता है अपने को ? मुझे तो तेरी बात सुन कर मूर्च्छा आने को हो रही है···जी मितला रहा है। हे राम ! हे शिव ! कैसा लोहे का कलेजा हो गया है इन धर्म के अंधों का। मैं तो इस नगरी में नहीं रह सकूंगा।

पाँचवाँ : अरे तुम तो क्या, महाराज चन्द्रदीप्ति और रानी सुनन्दा भी इस नगर को छोड़ कर जा रहे हैं। मेरे भानजे का एक मित्र गुप्तचर है···बस, मुझे तो इस सारे रहस्य का पहले ही भान था। मैं इसलिए चुप था कि देखूं क्या होता है।

पहला : क्या ? राजपाट, सब छोड़ रहे हैं ? लगता है कि महाराज और महारानी के सहयोग से ही यज्ञ के घोड़े को किसी सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया है। भइया ! खेत-खलिहानों में फसल न उगे तो···कुम्हार का चक्का चलते-चलते रुक जाय तो···बारिश न हो तो···जहाँ कोई विघ्न-बाधा आयी कि बिचारे मूक पशुओं को खट से काट कर उनकी बलि दे दी जाती है। मेरा तो रोम-रोम काँप उठता है यह काण्ड देख कर। मैं तो अपने परिवार को

लेकर यहाँ से निकल जाऊँगा। जा बसूँगा गंगा के उस पार वैशाली के पास गाँव में।

दूसरा : कुण्डपुर में? राजा सिद्धारथ के राज में? ...मैं भी चलूंगा तेरे साथ।

(बैलगाड़ी हाँकने की आवाज—चरमर-चरमर पहियों की आवाज, नर-नारियों का रंग-बिरंगे वस्त्रों में प्रवेश और गाना)

चमकी अंजुरिया वैशाली के देस,
बसहि वहीं हम मानुसवा के भेस।
अरे! सुनव वहाँ हम पंछी को रव-गान,
अपना हिय, सो पसु-पंछी में प्रान॥
चमकी अंजुरिया........

आठवाँ दृश्य

(वटुक का प्रवेश)

वटुक : (स्वगत) अरे मैं वटुक, निरा मूर्ख—भला क्या देख रहा हूँ यहाँ राज-भवन की अटारी पर चढ़ कर। देखने आया था कि कहीं राजकुमार वर्धमान संध्या समय अकेले न बैठे हों यहाँ—और देखने लगा धूल उड़ाती बैलगाड़ियों और रथों को जो दक्षिण-पश्चिम दिशा से आ रही हैं।... बैलों के गले में घण्टियों की टुनटुन कैसी मीठी लग रही है।

(एला का प्रवेश)

एला : ए भद्र-साधु वटुक! क्या देख रहे हो उचक-उचक कर...अटारी पर से? कुमार नंदिवर्धन प्रतीक्षा कर रहे हैं तुम्हारी, महाराज भी उत्सुक हैं जानने को कि कुमार कहाँ हैं?

वटुक : देख-देख एला! ...देख, वह रहे कुमार वर्धमान—नदी किनारे टहलते दिखाई दे रहे थे अभी। और अब देख...इधर आ...बैल-गाड़ी में आते यात्रियों के बीच में खड़े दिखाई दे रहे हैं। भला उस भीड़ में कुमार का होना—यह कैसे कहूँ जाकर महाराज से? जा, एला, तू ही जा। महाराज भेजें अश्वारोहियों को कुमार को बुलाने ...मैं उन पर से नेत्र नहीं उठा पाऊँगा। कैसा बांध लेते हैं वह तन-मन को! विचित्र आकर्षण है कुमार में। यह कैसा चुम्बक है उनके व्यक्तित्व में!

(पार्श्व से जयघोष के स्वर : 'राजा सिद्धार्थ की जय' 'गणतंत्र राज की जय' 'श्रमण धर्म की जय' 'भगवान पार्श्वनाथ की जय' अर्हतों की जय' 'अहिंसा धर्म की जय')

वटुक : अरे रे रे ! यह तो कुमार चल पड़े हैं यात्रियों की भीड़ के साथ। भीड़ तो आ लगी है राज-भवन के द्वार। चलूं, देखूं क्या हो रहा है वहाँ ?

(बटुक का बाहर जाना। राजद्वार पर महाराज को पुकारती भीड़ का प्रवेश)

भीड़ : राजा सिद्धार्थ की जय। पार्श्वनाथ भगवान की जय। हम सब इस राज्य में बसने आये हैं महाराज। निहत्थे दासों पर अत्याचार...

अन्य स्वर : मूक पशुओं की बलि...

और स्वर : सामन्तों का गरीबों और शूद्रों पर अत्याचार...अब नहीं सहा जाता। शरण दें महाराज ! कुमार वर्धमान हमारे दुःख से अति पीड़ित हैं। उन्हें हमने विस्तार से सब बताया है। कुमार...अरे,... कहाँ गये कुमार...अभी तो यहीं थे...

(भीड़ के आंदोलित स्वर सुनकर राजा सिद्धार्थ और सभागणों का प्रवेश)

सिद्धार्थ : स्वागत-स्वागत भद्रजन ! आपकी समस्या और मनःस्थिति से अवगत हुआ। आपका समुचित प्रबन्ध अभी हो जायेगा। मैं प्रयत्न करता हूँ कि आपकी देखभाल का, निवास-स्थान और खाने-पीने का प्रबन्ध हो। रात्रि में विश्राम के बाद आप स्वस्थ-मन हो जायें। कल परिषद के सम्मुख आपकी समस्या पर पूर्ण रूप से विचार होगा।

(महाराज सिद्धार्थ की जय बोलती हुई भीड़ का प्रस्थान)

(बटुक का प्रवेश)

सिद्धार्थ : प्रिय बटुक ! कुमार महावीर कहाँ चले गये ? देखो क्या इधर ही आ रहे हैं दोनों भाई ? (नंदिवर्धन का प्रवेश) ओहो, ये तो बस नंदिवर्धन ही है...। बटुक ! महारानी को सूचना दे दो। वह बहुत व्याकुल थीं।

वटुक : अभी महाराज। (बटुक का प्रस्थान)

सिद्धार्थ : बेटा नंदिवर्धन ! कहाँ थे तुम ! अस्त होते सूर्य की गोधूलि वेला में मन यों ही उदास हो जाता है। ज्यों पक्षी व्याकुल हो अपने नीड़ की ओर उड़ान भरते हैं अपने कोमल-प्राण शिशुओं को अंक में भरने को, वैसे ही मेरा मन अपने प्राणांशों को निकटता में समेटने को आर्द्र हो जाता है।

(त्रिशला का प्रवेश)

नंदिवर्धन : (प्रणाम कर) मां ! पिताजी ! वर्धमान की विनीत होने की अपार क्षमता उसे आपके सम्मुख निरुत्तर ही रखेगी। इसीलिए मैं ही अपने अनुज के विषय में आपके सम्मुख बोलने का साहस कर रहा हूँ। सांसारिक मोह-माया के बन्धनों से वर्धमान की जो स्वाभाविक विरक्ति है, उसे आप और माँ से अधिक कोई नहीं पहचानता। इस दिव्य व्यक्तित्व के प्रति समादर भाव होते हुए भी, हम अधीर हो उठते हैं उसकी इस अलगाव की प्रवृत्ति से। मेरा सुझाव है कि विवाह का प्रेममय मंगल-विधान वर्धमान की कोमल भावनाओं को अवश्य स्पर्श करेगा।

त्रिशला : बेटा नंदिवर्धन ! यह तो तूने मेरे अंतरंग की भावना को वाणी दे दी। वर्धमान की असाधारण प्रतिभा और प्रवृत्तियों पर मैं मुग्धा माँ इस वैवाहिक बन्धन को सामान्य जन के संदर्भ में स्वाभाविक और अनुकूल समझ कर भी अपने इस बेटे के लिये कहने में संकोच कर रही थी।

सिद्धार्थ : क्षमा करना प्रिये ! तुम माँ-बेटे की बातों में मैं अपनी भावना का परिक्षेपण कर रहा हूँ। पर मुझे आज की यह वेला कुछ अनकहे संदेशों से पूरित प्रतीत हो रही है। सहसा अन्य राज्य से आये व्याकुल यात्रियों का इस नगर में प्रवेश, भगवान पार्श्वनाथ के जयकारों की वातावरण में गूंज, और उस गूंज में व्याकुल प्राणों का अस्फुट आर्तनाद, महावीर को लौकिक बन्धनों से बाँध रखने की हमारी आंतरिक तीव्र विह्वलता, और साथ ही, एक विचित्र प्रकार की अन्यमनस्कता का बोध !

त्रिशला : प्राणनाथ ! नंदिवर्धन ने मेरे अन्तर के एक परोक्ष धरातल का उद्घाटन किया। और आपने एक अन्य मार्मिक अन्तःस्वर को झंकार दी। वर्धमान के प्रति माँ की भावना से परे लोकोत्तर एक और भावना है, वह मुझे सचेतन स्तर पर ज्ञात नहीं हो पाती थी।

नंदिवर्धन : माँ हम अपनी बातों में बह गये। और वर्धमान कहाँ हैं पता नहीं लगाया। आप और पिताजी इस दुविधा-जनक मानसिक स्थिति से मुक्त हों, यह मेरी प्रार्थना है। वर्धमान के भविष्य की रेखाएँ किस पथ पर अंकित होंगी इस चिन्ता का भार मैं शिरोधार्य करता हूँ। आप विश्राम करें, बहुत थके लग रहे हैं आप।

नंदिवर्धन : क्या कह रहे हैं पिताजी ! कल ही···इतना महत्त्वपूर्ण निश्चय इसी क्षण···यह कैसे होगा ? यह नहीं···

सिद्धार्थ : बेटा ! महत्त्वपूर्ण निश्चयों के काल-अंश सिमिट कर एक ही क्षण में केन्द्रीभूत हो आते हैं। वह क्षण आ गया—राजकुमार !

त्रिशला : मेरे अंतस् में आपके स्पन्दन प्रतिध्वनित हैं, महाराज !···बेटा नंदिवर्धन ! भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में अपनी श्रद्धा समर्पण कर हम दोनों एक ही राह के राही होने को उन्मुख हैं।

पार्श्व से स्वर : उठ्ठिये नो पमायए

एक अन्य स्वर : नश्वर शरीरादि के मोह-ममता रूपी प्रमाद से, अनादि मोह-निद्रा से उठो ! जागो ! और अपने सहजात्म स्वभाव में जगे रहो, उसे स्मरण रखो।

पार्श्व-स्वर-१ : समयं गोयम मा पमायए। जे एगं जाणई ते सव्वं जाणइ।

पार्श्व-स्वर-२ : हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद न कर। जो एक (शुद्ध आत्म-स्वरूप) को जानता है, वह अन्य सबको जानता है।

(सब चकित हो दिव्य-ध्वनि को सुनते हैं)

सिद्धार्थ : ये दिव्य-ध्वनि ! महावीर का स्वर है या मेरे अंतर का। बेटा ! वर्धमान को बुलाओ—क्षण आ पहुँचा।

नंदिवर्धन : पिताजी ! पिताजी ! यह स्वप्न है या सत्य ? मैं—अकेला ? नहीं···नहीं···

सिद्धार्थ : बेटा नंदिवर्धन ! वर्धमान को शीघ्र बुलाओ। बेटा ! तुम लोकतंत्र की चिंता से मुझे मुक्त करने में पूर्ण समर्थ हो। मैं कितना भाग्य-वान हूँ। और महावीर—तीर्थंकरत्व उसके मुख पर दीप्त है। उस मुख से झरती किरनों ने मोहान्धकार दूर कर दिया है। अब मैं और तेरी माँ भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में समर्पित हैं।

(पार्श्व से स्वर, जिसमें सिद्धार्थ और त्रिशला के स्वर जुड़ जाते हैं)

पार्श्व-स्वर : चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—
अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि.
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

(धीरे धीरे सब का प्रस्थान। जय जय ध्वनि के साथ मंच पर अन्धकार)

नौवाँ दृश्य

(प्रभाती की धुन में वाद्य-अंतराल। अगला प्रभात प्रकट होता है)

पार्श्व-स्वर : धर्म-तीर्थ-गामी सिद्धार्थ-त्रिशला की जय। जय हो, महाराज नंदिवर्धन की जय, कुमार वर्धमान की जय। कुण्डपुर की जय। वैशाली गणतंत्र की जय।

पार्श्व-स्वर : (घोषक के) महापुण्यशाली राजा सिद्धार्थ और माँ त्रिशला ने लौकिक संसार से विदा ले अर्हत् धर्म का पालन किया है। इस सुन्दर प्रभात वेला से कुण्डपुर का गणतंत्रीय शासन, महाराज नंदिवर्धन द्वारा शोभायमान है।

(मंच पर प्रकाश। नंदिवर्धन और महामंत्री का प्रवेश बातचीत करते हुए)

महामंत्री : महाराज ! स्वस्थ मन हों। घटनाएँ तीव्रता से समक्ष आ रही हैं। अन्य नगर-गाँवों से यात्रियों की भीड़ बढ़ रही है। द्वार पर आपके आदेश की प्रतीक्षा है।

नंदिवर्धन : (**उदास स्वर में चिंतित**) महामंत्री जी ! कल पिताजी और माँ के दीक्षित होते ही वर्धमान ने अपनी सारी सम्पत्ति जन-गण में वितरित करने की घोषणा की है। मुख्य कोषाध्यक्ष से कहिए कि वह सब द्रव्य परिषद् के हाथों सौंप दें। परिषद् जिस प्रकार चाहे, उसे दूर नगरों से आये लोगों को बसाने के काम में लाये। योग्यता, दक्षता और रुचि के अनुसार वे सब कार्यरत हों। इस विषय में उनके गृह-राज्यों को भी सूचना भेज दें।

महामंत्री : महाराज ! आपका आदेश परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत हो जायेगा। सदस्यों के मतानुसार आज्ञा-पालन अवश्य हो जायेगी। मैं अभी यह सूचना यात्रियों को दे आता हूँ।···महाराज ! यह बटुक कुछ कहना चाहता है।

(बटुक का प्रवेश)

नंदिवर्धन : ओह ! बटुक इधर आओ—दूर क्यों खड़े हो ? क्या कहना है ?

बटुक : राजकुमार ! नहीं नहीं, महाराज ! कैसे कहूँ ? जो अपनी आँखों से देखा। कुमार वर्धमान ने अभी-अभी अपने सारे बहुमूल्य बिछावन, ओढ़न, केवल दो-चार वस्त्रों आभूषणों को छोड़कर और सब कुछ जनता में वितरित कर दिया।

नंदिवर्धन : क्या ? सब वितरण कर दिया ! माँ और पिताजी ने वैराग्य ले लिया और महावीर सब त्याग रहा है ! क्या सांसारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह मुझ अकेले के कंधों पर आ पड़ा ? मैं अत्यन्त विचलित हूँ इस समाचार से। बिना वर्धमान को साथ लिये व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आधारित इस गणतंत्र की आत्मा को कैसे पाऊँगा मैं ? वह भले ही मेरा अनुज है। पर, उसकी हंस की-सी क्षीर-नीर विवेक-बुद्धि, उसका-सा मन-वचन-काय का यौगिक और संयमित उपयोग, सागर-सा विशाल गम्भीर धैर्य कहाँ पाऊँगा मैं ? कैसे चलेगा यह शासन बिना उसके नायक बने ?

वटुक : महाराज ! मैं बहुत मूर्ख हूँ जो ऐसा समाचार लाया कि आपको इतना दुःख हुआ। पर बिना कहे रह जाना अधिक मूर्खता होती सम्भवतया।...और बताऊँ महाराज !

नंदिवर्धन : अवश्य वटुक ! तुम्हें पूरी-पूरी छूट है कहने की।

वटुक : तो सुनिये महाराज ! कुमार वर्धमान ने कल रात से ही नियम ले लिये हैं कि वे जमीन पर सोयेंगे। दिन में केवल एक बार और वह भी अपने निमित्त से न बने भोजन को सूर्यास्त से पहले ग्रहण करेंगे। किसी प्रकार के शृंगार-प्रसाधन को उपयोग में नहीं लायेंगे। बोलना, नितान्त आवश्यक ही हो तो; अन्यथा मौन हैं। और, अधिक से अधिक एकान्त में समय बिता रहे हैं।

नंदिवर्धन : प्रिय वटुक ! भावी वास्तविकता सामने आ गयी है। यथार्थ को कब तक नकारते रहें हम सब। महावीर का घर से यह नाममात्र का सम्बन्ध भी दो वर्ष का है। दो वर्ष पश्चात् वह प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा, यह अनुमति वह मुझ से बहुत पहले ले चुका है। बन्धु ! हमें भी संयम, विवेक और दृढ़-निश्चयों में परिपक्व होने की ओर अग्रसर होना है।

वटुक : स्वामी ! यह बुद्धिहीन तुच्छ सेवक आपकी बतायी राह पर चलेगा।

दसवाँ दृश्य

(लौकान्तिक देवों का प्रवेश गाते हुए)

लौकान्तिक देव : जय जय खत्तियवरवसभ बुज्झहि भगवं।
सव्व जगज्जीवहियं अरहंतितित्थं पवत्तेहि॥

हे क्षत्रिय-वर वृषभ ! आपकी जय हो। अब आप दीक्षा ग्रहण करें और समस्त प्राणियों के लिए हितकर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन करें।

(मंच पर—छायाचित्र उभरते हैं)

वाचक (पुरुष) : दो वर्ष बाद लोकान्तर से आये देवत्व के स्वरों ने वर्धमान को सम्बोधित किया और उनकी वैराग्य-भावना क्रियाशील हो उठी।

(गृह त्याग कर, महाभिनिष्क्रमण को प्रस्तुत हैं वर्धमान)

(छायाचित्र)

वाचक (नारी) : आत्मा में प्रस्फुटित सूक्ष्म ज्योति से जगमग चन्द्रप्रभा पालकी पर आरूढ़ हुए वर्धमान वन-प्रस्थान को—

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : उस पालकी के वाहक हैं ऊर्ध्व लोक के निवासी देव; चंवर डुला रही हैं देवियाँ, पालकी के पीछे-पीछे चल रहे हैं राजा नंदिवर्धन, राजगृह के सब बन्धु-बांधव, कुण्डपुर के नगर-निवासी—

(पालकी छायाचित्र में, शेष सब मंच पर)

वाचक (नारी) : वर्धमान पहुँचे हैं दिव्य आलोक से मंडित ज्ञातृखण्ड उपवन में, जो कुण्डपुर के समीप ही है।

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : अशोक वृक्ष के नीचे पत्थर की स्वच्छ शिला है। वर्धमान पालकी से उतर कर उसी शिला पर जा बैठे हैं।

(छायाचित्र)

वाचक (नारी) : दीक्षा-ग्रहण का क्षण आ गया। वर्धमान ने एक-एक करके सब वस्त्र-आभूषण उतार दिये। पाँच मुट्ठियों से भरकर सारे केशों का लुंचन किया। दो दिन के निर्जल उपवास से स्वच्छ हुए कुन्दन शरीर से दिव्य रश्मियों की आभा चारों ओर बिखर गयी।

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : हेमन्त ऋतु में मंगसिर मास की कृष्णा दशमी का सुव्रत दिवस, विजय नामक मुहूर्त, चौथा प्रहर, और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र···। प्रभु ने देव और मनुष्यों की विशाल परिषद् के सामने सिद्धों को नमस्कार करते हुए कहा—

पार्श्व से महावीर-वाणी (गूंज) :

सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं।

वाचक : अब से मेरे लिए सब पाप-कर्म अकरणीय हैं।

पार्श्व से (गूंज): करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।

वाचक : आज से त्याग करता हूँ मन-वचन-काय से उन कार्यों का जो हिंसामय हैं। हिंसा न करूँगा, न करवाऊँगा न अनुमोदन करूँगा।

सामूहिक स्वर : धन्य---धन्य—धन्य ! प्रभु !

श्रावक : (पूजा गायन)

मंगसिर असित मनोहर दशमी ता दिन तप आचरना।
नृप-कुमार घर पारन कीनो, मैं पूजूं तुम चरना।।
नाथ मोहि राखो हो सरना।।

नंदिवर्धन : (मंच पर) उपस्थित देवगण एवं प्रियजन ! हम विदा लें। प्रस्थान करें अपने स्थान को। विश्व-कल्याणकारी वर्धमान की जय—
निग्गंठ पुत्त—-नात-पुत्त—महावीर की जय !
भगवान पार्श्वनाथ की जय···।

('जय' शब्द में सामूहिक-स्वर)

ग्यारहवाँ दृश्य

(मंच पर प्रकाश—निताशा और रीना का प्रवेश)

निताशा : रीना ! तूने मुझे तपस्वी वर्धमान के चरणों तक पहुँचा दिया। पर एक बात बारबार मन में उठती है कि वर्धमान ने घर क्यों छोड़ा ? वे सब कुछ त्याग कर निर्जन वन में तपस्या करने क्यों चले गये ? अगर उन्हें उस काल की सामाजिक या राजनैतिक व्यवस्था मानव के हित की नहीं लगती थी तो क्या वे परिवर्तित व्यवस्था की स्थापना शासक और नायक बनकर नहीं कर सकते थे ?

रीना : निताशा ! महावीर के सामने प्रश्न तात्कालिक सुख-शान्ति की स्थापना का नहीं बल्कि मूलभूत समस्याओं के शाश्वत समाधान का था। केवल शासन और सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन से क्या मनुष्य चिर आनन्द और निराकुलता प्राप्त कर सकता है ? साधारण मनुष्य के अन्तरंग की व्यवस्था का परिवर्तन किये बिना, चिर आनन्द की स्थिति कल्पित नहीं हो सकती। और, मनुष्य के अंतस् के विषय की खोज, साधारण परिस्थितियों में हो ही नहीं सकती।

अंतस् में उतरने के लिए तीर्थकर यानी तारण-तरण होने के जन्म-जात गुण, घोर तपश्चरण की क्षमता और तपस्या के अनुभव से ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य और फिर उस क्षमता और ज्ञान की उपलब्धियों को प्राणी मात्र के कल्याण हेतु उन तक पहुँचा सकने की वह वाणी जो मूक पशु-पक्षियों से लेकर धुरंधर योगियों और धनुर्धारी राजाओं, महाराजाओं और साधारण जन—सबकी समझ में आये—आवश्यक तत्त्व हैं। वर्धमान ने तापस रूप धारण किया ज्ञातृखण्ड वन में। रात्रि से पहले ही पहले, वे जा पहुँचे कर्मारग्राम में जहाँ वे अचल ध्यानस्थ हैं आत्मा की गहराई में डूबे हुए, आत्मा से भिन्न जगत् से निरपेक्ष।

(भगवान का छायाचित्र ध्यानावस्था में)

निताशा : काश ! मैं उस युग में जनमी होती और प्रभु के चरणों के पग से काँटे-कंकड़ चुगती, उनकी सेविका वन साथ रहती।

रीना : तेरी इस भाव-भक्ति की भरपूर प्रशंसा करती हूँ। पर पगली ! जिस महायोगी ने पूरा राजपाट, घर-परिवार और सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर, स्वयं में समाधिस्थ होने के लिए निर्जन वनों का एकान्त, ऊबड़-खाबड़ धरती पर गमन, जीव-जन्तुओं का आक्रमण और दंश, गर्मी-सर्दी और वर्षा-आँधी के थपेड़े सहने का व्रत लिया, वह तुझे अपनी सेविका बनने का अवसर ही कब देता ? उनके लिए तो वह उपसर्ग ही होता—साधना में बाधक। उन्होंने अपनी साढ़े बारह वर्ष की तपस्या में जिन जिन उपसर्गों को झेलकर, अनुभूति का साक्षात् किया और स्वयं पर प्रयोग कर जिस ज्ञान की प्राप्ति की, वह हम जैसे साधारण मनुष्यों को चमत्कार लग सकते हैं, पर भगवान का जीवन दर्शाता है कि मनुष्य में निहित क्षमता के पूर्ण विकास की दृष्टि के प्रकाश में, वे सब सम्भव हैं। देख ! कर्मारग्राम में पहुँच।

(मंच पर अंधकार। निताशा और रीना का प्रस्थान)

बारहवाँ दृश्य

(मंच पर प्रकाश। एक ग्वाले का प्रवेश)

ग्वाला : अरे वाह, यह मेरा कर्मार-ग्राम भी क्या है जिसके घने जंगल तक में कल एक भला आदमी दिखाई दे गया था। और वाहरे मेरी अक्कल, कि मुझे भी सूझा कि इसके हवाले कर दूँ अपने बलधर-हलधर को कि वे घास खायें जी भर के···और मैं दोहूँ दूध थन-धर के।···अरे वाह, मैं तो कविता बोल गया। क्या कहा मैंने···'वे घास खायें जी भरके, और मैं दोहूँ दूध थन-धर के।' छी: छी:, ग्वाला हूँ और रस ले रहा हूँ कविता का! डूब गयी बुद्धि मेरी! भूल गया कि रात भर भटका हूँ इन जंगलों में उन बैलों को ढूंढ़ता जो उस भले आदमी के पास छोड़ गया था और साँझ को जब दूध दोहकर आया था तो उसके पास नहीं मिले थे! मेरा चित्त बौरा गया है, कविता की धुन चित्त में उतरी है—भला एक बार साँझ को उस गुम-सुम बाबा से पूछता तो सही कि मेरे बैल कहाँ हैं।···हुआ सवेरा और अब फिर आ पहुँचा बैल ढूंढ़ने और बैल ढूंढते-ढूंढते फिर उतर गया कविता में। चलूँ जल्दी से—अपने बैलों को संभालूँ, उस मूरत के पास से। अरे ओ हलधर-बलधर! (चु चु चु की आवाज, (जैसे चुमकार से बैलों को बुला रहा हो) करता हुआ अन्दर चला जाता है। छायाचित्र—महावीर ध्यानस्थ हैं—दो बैल उनके दोनों चरणों से लगे बैठे हैं)

पार्श्व से ग्वाले के स्वर : अरे! परगट हो गये इस मूरत के पास। कैसे मगन बैठे हैं इसके पाँवों से लगे!—अरे अब तो बोल, कहाँ छुपा दिया था मेरे बैलों को रातभर? क्या समझा था तूने कि रातभर इनको छिपा रखेगा तो यह तेरे हाथ लग जायेंगे?—बोल तो सही। —गूंगा भी है।

(छायाचित्र अदृश्य हो जाता है और ग्वाला बड़बड़ाता मंच पर आता है)

ग्वाला : (रस्सी हाथ में ले, स्वगत) अब इस रस्सी से पिटेगा तो बच्चू की अक्कल ठिकाने लगेगी। ले बँध इस रस्सी से—ले चलूँ कोतवाल के पास। (बांधने को उद्यत) हैं यह क्या? मेरा कंठ सूख गया चीखते-चीखते और हाथ दुख गये रस्सी को कसते-कसते। अब तो मेरे हाथ उठते तक नहीं। कौन है ये मूरत?—

यह मुझे क्या हो रहा है ? हाय मैंने यह क्या किया ?—अंधा हो गया बैलों के मारे—हायरे···वह हलधर और वलधर, उनकी आँखों से आँसू वह रहे थे और वे लोट गये थे उसके पाँव में। क्या वह कोई तपस्वी है ?—ओह ! मैं निराधम, बुद्धि-भ्रष्ट—समझा नहीं कि यह मौन साधे अचल ध्यान में मगन साधु हैं। हाय ! क्या करूँ मैं ? भगवन् !—भगवन् ! रक्षा करो मेरी। **(प्रस्थान)**

(छायाचित्र भगवान के—विभिन्न मुद्राओं में)

वाचक : वर्धमान पन्द्रह-पन्द्रह दिन का निर्जल उपवास रखते—कई दिन और रात लगातार कायोत्सर्ग तप और साधना में लीन रहते। पन्द्रह दिन के वाद···एक वार समीप वाले गाँव या नगर में आहार को जाते और वह भी एक विशेप प्रतिज्ञा को मन में धारण कर कि वैसा संयोग होगा, तो आहार लेंगे, अन्यथा नहीं। वे कर्मारग्राम से कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे, वहाँ से मौराक, मौराक से दूइज्जंतग पापंडस्थों के आश्रम में। और वहाँ से अस्थिक ग्राम के वनों में—अस्थिक ग्राम से सुवर्ण-वालुका और रूप्य-वालुका नदी पार कर वे पहुँचे कनखल आश्रमपद में।···वर्धमान चले जा रहे थे तप-यात्रा पर—वे उत्तर वाचाला से सेयंविया—सेयंविया से सुरभिपुर। वहाँ से राजगृह, थूणाक सन्निवेश, और फिर नालंदा। ···यात्रा पर यात्रा, तपस्या और तपस्या में तल्लीन। ध्यान और ध्यान। चिन्तन और चिन्तन—मनन ही मनन, मौन—मौन।

(श्रावकों की भीड़ मंच पर आती हुई प्रवेश करती है)

श्रावक (गायन) : ते गुरु मेरे उर वसो, जे भव जलधि जिहाज।
आप तिरें, पर तारहिं ऐसे श्री मुनिराज॥
ऐसे श्री मुनिराज······।
जेठ तपें रवि आकरो, सूखे सरवरनीर।
शैल शिखर मुनि तप तपें, दाझें नगन शरीर॥
ते गुरु मेरे उर वसो।

(श्रावकों का प्रस्थान, छायाचित्र पट पर उभर आते हैं)

वाचक : और ये चल पड़े हैं वर्धमान। ···रात्रि में ध्यान, दिन में एक-एक पग सावधानी से रखते प्रस्थान। आनन पर आभा-मण्डल लिये, शरीर से कान्तिमय दिव्यता विखराते वे पहुँचे

चम्पा-पुरी में और वहाँ से कालाय सन्निवेश और फिर वहां से पत्तकालाय के खंडहरों में ध्यान-मग्न।—पत्तकालाय से प्रस्थान कर पहुँचे हैं कुमाराक सन्निवेश और वहां से चम्परमणीय उपवन में।

(कोलाहल के स्वर। कोलाहल करते कई व्यक्ति मंच पर आते हैं)

कई व्यक्ति : (क्रम से) पकड़ो—पकड़ो! वह रहा गुप्तचर—और उसका साथी। ले चलो इन्हें बाँध कर राजा के पास।—क्या मिले हैं चलती राह में। हा-हा-हा-हा, सारा दिन हो गया इन्हें ढूंढते-ढूंढते।

(गोशालक का प्रवेश, सिपाही उसे पकड़ने को आगे बढ़ते हैं)

गोशालक : अरे ये क्या करते हो? किसे पकड़ रहे हो? बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है क्या? जानते नहीं मैं कौन हूँ? मैं हूँ गोशालक, और वे हैं वर्धमान, कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ के पुत्र। आत्म-कल्याणी तपस्वी···ध्यान में मग्न हैं वे। खबरदार जो उन्हें या मुझे हाथ लगाया।

एक सिपाही : गोशालक? कौन गोशालक?

दूसरा सिपाही : अरे मूर्ख, तू नहीं जानता इन प्रसिद्ध भिक्षु गोशालक को? प्रणाम गोशालक भिक्षु!···आप वर्धमान के साथ कैसे?

गोशालक : (स्वगत) अब आये रास्ते पर। (प्रकट) अरे क्या पूछते हो—मैं वर्धमान के आत्मा और जीवन के ज्ञान से इतना प्रभावित हुआ हूँ कि अब मैं इनका शिष्य बनकर साथ-साथ घूमता हूँ। आया कुछ समझ में।—पर हे भगवान! इनकी सी घोर तपस्या—ओह! मैं तो कभी नहीं कर सकूंगा···कभी नहीं। इनकी अद्भुत क्षमता देख कर तो मैं विचलित हो जाता हूँ।

दूसरा सिपाही : क्षमा करें महापंडित गोशालक! अनजाने में घोर अपराध हो जाता।—पर इस सुनसान अंधेरे में—वह इस तरह नग्न!—अपरम्पार महिमा है!

(सबका प्रस्थान) (वाद्य ध्वनि)

वाचक : और अब वर्धमान पहुँचे हैं चम्पा में—पूस का महीना है—किटकिटाता जाड़ा, बादल घनघोर घिर आये हैं, आकाश में बिजली कड़क रही है। (बारिश जोर जोर से होने की आवाज और बिजली की कड़क का दृश्य)

(श्रावक गण मंच पर गाते हुए आते हैं)

श्रावक गण : ते गुरु मेरे उर बसो, जे भव जलधि जिहाज,
आप तिरें भव तारहिं, ऐसे श्री-मुनिराज।
पावस रैन डरावनी, बरसें जलधर धार।
तरुतल निवसें साहसी, बाजें झंझावार॥
बाजें झंझावार— बाजें झंझावार—

(गाते-गाते प्रस्थान)

(छायाचित्र में वर्धमान के चरण गमन करते हुए)

वाचक : पृष्ठ-चम्पा से कयंगला, जहाँ रहते थे दरिथेर पापंडस्थ लोग। वहाँ से विहार कर गये श्रावस्ती को, और वहाँ से एक पेड़ के नीचे रात्रि-वास करके नंगला, नंगला से आवता गाँव और वहाँ से चौराक और कलंबुका सन्निवेश में और···ये क्या ?—(जोर-जोर से चाबुक से पीटने की आवाज़)

(मेघ और कालहस्ती व उसके साथियों का प्रवेश)

मेघ : अरे वह मूर्ख जन ! कैसे हिम्मत की थी उसने यहाँ आने की ? जानता नहीं हमें ? इस बीहड़ जंगल में हम जैसे भयंकर मनुष्यों की गुफा है। हमारे नाम से काँपते हैं राजा, महाराजा। हम हैं मेघ और कालहस्ती। अब हम मुखिया नहीं कि भिखारियों को खिलायें-पिलायें। अब हम डाकू हैं डाकू। दे तो सकते नहीं अब हम कुछ भी उसे, पर हाय-हाय, कुछ ले भी तो नहीं सकते उससे। निपट नंगा। विकट हालत है।—पर हाथ बेचैन हैं कुछ करने को। आओ साथियो ! जरा हाथ ढीले किये जायें उस भिखारी पर—लगाओ दस-बीस। खड़े क्या देख रहे हो ?

(कुछ साथी पार्श्व की ओर जाते हैं। चाबुक से मारने की आवाज पार्श्व से)

कालहस्ती : पर यह लो ! वह तो न रोया है न चिल्लाया है। कुछ आनन्द ही नहीं आया मारपीट का। अरे, यह क्या ? मैंने तो न मारा न पीटा, पर मेरे हाथ सन्न हुए जा रहे हैं। अबे मेघ ! खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ? दाब दे मेरे हाथों को—इन्हें जरा गरमा।

मेघ : अरे ओ कालहस्ती, उन्माद छोड़। पहचान तो अधम ! कि हम किसके साथ उपद्रव करने की ठान रहे हैं। डाकू तो मैं भी हूँ पर बुद्धि-विवेक जाग उठा है उस तपस्वी के दर्शनों से। आँखें खोल

और पहचान उन्हें—वह साधारण व्यक्ति नहीं है—सच कहता हूँ लोट जा उनके चरणों में, प्रणाम कर प्रभु को—(**छायाचित्र में स्थित भगवान को नमस्कार करते मेघ और कालहस्ती का प्रस्थान**)

वाचक : प्रभु वर्धमान ने विचारा कि जितने उपसर्गों को झेला है, उससे कहीं उत्कट उपसर्ग झेलकर तपने का अवसर आये तो कर्मों की निर्जरा हो। मनुष्यों द्वारा दिये गये कष्ट और यातनाएँ भगवान की अचल अखण्ड मानस शिला से टकरा-टकरा कर चूर होती चली गयीं। प्रकृति की दुर्द्धर्ष और दुर्दम शक्तियाँ जैसे नयी चुनौतियाँ लेकर सामने आ खड़ी हुईं, उन्हें देखना था कि कहीं भय का हल्का सा भी कम्पन उत्पन्न हो जाये तो प्रकृति की व्यन्तरी सत्ता को अट्टहास करने का अवसर मिले।—हुँ, मनुष्य की आत्मशक्ति का दर्प ! उधर भगवान दो महीने का उपवास साधे आत्मा का अलख जगाये खड़े थे कि प्रकृति ने अपनी शक्ति तौलनी चाही। प्रकृति के दुर्दम रूप साकार उपस्थित हुए उपसर्ग देने को।

(ध्वनि-प्रभाव, आलोक-प्रपात एवं ताण्डव नृत्य द्वारा पैशाचिक अट्टहास, तुमुल झंझावात, शिलाएँ और चट्टानें टूटती हुईं, धरा फटती हुई, जल-प्रलय, वीभत्स चीत्कार, भयानक ध्वनियाँ—सांय सांय—हा हा हा—धड़ाम धड़ाम आदि।)

वाचक : पर भगवान निर्विकार, निश्चल, शान्त, अडिग।

(श्रावक वन्दना के स्वरों में गाते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं)

श्रावक : देव त्वमेव लोकेऽस्मिन्, वीर्यशाली जगद्-गुरुः।
वीराग्रणीर्महावीरो, महा-ध्यानी महातपाः॥
क्षमया भूसमो दक्षो, गंभीर इव सागरः।
स्वच्छाम्बुवत्प्रसन्नात्मा, कर्मारण्ये जगत्त्रये।
सन्मतिः सार्थकस्त्वं च परमात्मा महाबलः॥ **(प्रस्थान)**

वाचक : इस प्रकार १२ वर्षों तक घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते, और जिनत्व की ज्योति से अधिकाधिक जगमगाते, महावीर सिद्धारथपुर, वैशाली, सावत्थी, दृढ़भूमि, वालुका, सुयोग, सुच्छेत्ता, मलय, हस्तिशीर्ष, मिथिला, वाराणसी, भोगपुर, नंदिग्राम से होते हुए कौशाम्बी पहुँचे—कौशाम्बी महावीर की क्रान्तिकारी समाज-रचना और समाज-दर्शन की रंग-स्थली ! उनकी निराहार तपस्या की नयी कसौटी !

तेरहवाँ दृश्य

(कौशाम्बी नगर का दासों की बिक्री का बाजार। दो व्यक्ति बारू और मटकू झुमरिया के साथ गाते बजाते प्रवेश करते हैं)

गायन : हमहि भये इस नगर के सेठवा
पिय खाय रहि, नहि फिकर जिकरवा।
बेचवा—बेचवा—खरिदवा-खरिदवा
कौड़ियों के भाव में बिकत मनुसवा—
मनुसवा—मनुसवा—
काहे रे मनुसवा—?—
हम हैं मनुसवा—हम हैं मनुसवा—
नहीं नहीं !—हम हैं सेठवा—हम हैं सेठवा
हम हो खरीदवे मानुस-मानुसवा—

(नगाड़े पर बोली लगाता एक विक्रेता आता है, कई दास-दासियों के साथ। उनमें एक अत्यन्त सुन्दर युवती भी है)

दास-विक्रेता : अरे आओ सेठो—आओ साहूकारो—बढ़िया माल—कौड़ियों के दाम—देखो ! परखो ! !

(चार-पाँच व्यापारियों का प्रवेश मूछों पर ताव देते हुए और हाथों में मुद्राओं की थैली संभाले)

एक व्यापारी : **(युवती की ओर देखता हुआ)** लगाओ बोली, छुड़ायेंगे हम—किसी के हाथ न लगने दूंगा।

दूसरा व्यापारी : **(पहले को धकेलते हुए)** अबे उधर को जा ! आकाश को जीतने की हिम्मत न कर ! ये सुन्दरी दासी तो मेरे ही साथ जायेगी।

तीसरा व्यापारी : **(जो ईरानी मालूम होता है)** अबे खड़ा क्या है नगाड़ू—बोल बोली ! देखूं कौन टिकता है मेरे सामने—जान की बाजी लगा दूंगा इसे खरीदने के लिए।

दास-विक्रेता : आओ भाईयो, कौशाम्बी के सेठ साहूकारो ! बिकता है माल कौड़ियों के दाम—सहस्र मुद्रा—एक—

एक व्यापारी : पाँच सौ **(खीस निपोरता हुआ)**

दूसरा : पाँच सौ एक—

तीसरा : जा रे ! यही हिम्मत थी बस—हमने बोले एक हजार।

दास-विक्रेता : एक हजार—एक हजार—एक हजार एक—एक हजार दो—

(इतने में धनावह् श्रेष्ठी का प्रवेश)

धनावह् : रुको !—रुको—मेरी बोली है दस हजार—दस हजार—

तीनों व्यापारी : अरे रे रे रे रे रे—धनावह् सेठ !—दस हजार—बाप रे बाप—

(तीनों व्यापारी खिसक जाते हैं)

दास-विक्रेता : दस हजार एक—दस हजार दो—दस हजार तीन—

(दास-विक्रेता युवती को मुक्त करता है। धनावह् सेठ के पीछे पीछे युवती चली जाती है। दास-विक्रेता—वारू—मटकू—झुमरिया नाचते-गाते चले जाते हैं)

(वाद्य अन्तराल)

(दो स्त्रियाँ, वनसुन्दरी और नीर-भरना का प्रवेश। वनसुन्दरी मालिन है और नीर-भरना पनिहारिन)

नीर-भरना : अरी वन्या ! तू भी तो आयी थी श्रमण-मुनि वर्धमान के दर्शन करने ! हाय, क्या तेज है मुख पर और कैसा प्रकाश बिखरता है देह से ! पर सुना है कि वे पाँच महीने से उपवासी हैं—

वनसुन्दरी : हाँ नीरा ! इतना कठोर उपवासी शरीर और यह सूरज की सी जोत लिये देह ! आज मैं महारानी मृगावती के केशों में फूल सजाने गयी तो वे बहुत उदास थीं। वे श्रमण भगवान पार्श्वनाथ को पूजती हैं न, और वर्धमान भी श्रमण साधु हैं। उनके दर्शन करने वे प्रतिदिन जाती हैं। सारे नगर में, घर-घर में कहलाया है उन्होंने कि स्वामी वर्धमान के आहार को तरह तरह संजोया जाय। वे स्वयं प्रतिदिन आहार का आयोजन करती हैं। स्वामी वर्धमान निकलते हैं आहार को, पर पूरे पाँच महीने पचीस दिन हो गये और बिना जल आहार के लौट आते हैं। महारानी इसी बात से अत्यन्त व्याकुल हैं—उनकी नगरी में स्वामी आयें और इतने दिन निरा-हार रहें !

नीर-भरना : वन्या ! कोई बहुत ही टेढ़ी आखड़ी मन में ठानी होगी स्वामी ने—सत्य ही, बहुत चिन्ता की बात है। दुःख यह भी है कि हम तो उस जात के भी नहीं कि स्वामी को आहार दे सकें।

वनसुन्दरी : नीरा ! मेरा मन कहता है कि स्वामी आहार लेंगे तो किसी हम जैसी निम्न गिनी जाने वाली से।—स्वामी को देख कर लगता है कि उनके नेत्रों से करुणा झर रही है। उनके दर्शन से

फूटती शान्ति और प्रेम की किरनें हमें छू रही हैं जैसे वे हमारे हैं, वहुत हमारे—

नीर-भरना : हाँ, वन्या ! वे हमारे हैं—वहुत हमारे—सवके—सवके

(भाव-विह्वल सी अवस्था में दोनों का प्रस्थान। मंच पर अंधेरा। वाद्य संगीत।)

पार्श्व से वाचक स्वर : कौशाम्बी नगर, धनावह श्रेष्ठी का प्रासाद। एक सप्ताह पश्चात्—

(दासी युवती चंदना अत्यंत सुन्दर—लम्बे वाल—श्वेत वसन वेड़ियों से जकड़ी दीन मलीन अवस्था में बैठी है। एक प्रौढ़ नारी, नाम है मूला (धनावह सेठ की पत्नी) और नाई (चंदना के वाल काटने के लिए) वहाँ है।)

मूला : ओ हो क्या वनी थी वेटी मेरी—नागिन वन कर मुझे ही डसना चाहती है। हैं भी तो नागिन से लम्बे लम्बे वाल ! काटो इन्हें क्षूरसेन—मूँड दो इसका सिर। आज इसने हाथ धुलाते-धुलाते केश ही डाल दिये श्रेष्ठी के चरणों में—कैसा स्वांग रचा है ?

(सौम्यरूपा चन्दना की आँखों में आँसू झलक आये हैं किन्तु वह अवाक्-चुप है। अपने केश सामने कर देती है कटवाने के लिए)

क्षूरसेन : श्रीमती जी हाथ काँपते हैं—कैसे काटूँ इन कोमल काली केश राशि को।

(चंदना अपने हाथ में कैंची लेकर स्वयं अपने केश काट देती है और मूला की ओर वढ़ा देती है। मूला वालों को एक ओर फेंक कर एक सूप में कोदों के दाने डाल कर चंदना को देती है)

मूला : यह ले—यह ले, खा ले—पड़ी रह।

(धनावह सेठ का प्रवेश। चन्दना को देखता है—मूला को—वह हक्का-वक्का हो वरस पड़ता है अपनी पत्नी पर)

धनावह : यह क्या देख रहा हूँ ? नारी की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति इस सीमा तक पहुँच सकती है, कभी कल्पना नहीं की थी। चन्दना वेटी ! तू वहुत ही अभागी है। मैं कुछ न कर सका तेरे लिए।

(सिर पकड़ कर बैठ जाता है। मूला लज्जित और स्तम्भित। धनावह एकाएक खड़ा हो जाता है और चन्दना की वेड़ियों को खोलने को वढ़ता है)

धनावह : वेटी चन्दना ! मैंने तुझे दासीत्व से मुक्त किया, तू स्वतन्त्र है। इस घर में तेरे लिए जगह नहीं दे सकी यह !···

चन्दना : (भरे कंठ से) पिताजी, पिताजी मां···मां !···कहाँ जाऊँ ?

कितने धक्के खाये हैं ? भगवान् ! शरण लो—शरण लो !

(वह उठ कर कोदों के दाने हाथ में ले, अधखुली बेड़ी पाँवों में पहने, घर के द्वार से एक पैर बाहर और एक पैर अन्दर रखे ही थी, कि उसकी दृष्टि महावीर स्वामी के चरणों पर पड़ी। वह उसी ओर जाती है। धनावह सेठ और मूला उसके पीछे-पीछे जाते हैं। मंच पर अन्धेरा)

(मंगल वाद्य ध्वनि)

पार्श्व-स्वर : महावीर भगवान की जय ! श्रमण धर्म की जय ! सती चन्दना की जय ! सती चन्दना की जय !—आहार ले लिया भगवान ने !—चन्दना के हाथों आहार हुआ—कोदों के दानों से आहार ! जय हो जय हो !

(वाद्य-संगीत। मंच पर प्रकाश)

(नर-नारियों का झुंड प्रवेश करता है। मंगल गीत गाते उत्सव मनाते जा रहे हैं)

भाग जगे कौशाम्बी के
दासी हाथों आहार हुआ···
लो दीन दुखी मानुष मन का
प्रभु के द्वारा उद्धार हुआ
धन्य धन्य हैं वर्धमान
समभाव सफल साकार हुआ।

पार्श्व-स्वर : कौशाम्बी के नागरिको ! महाराज शतानीक, रानी मृगावती जन-पथ पर पधार रहे हैं। वर्धमान स्वामी के आहार-अभिग्रह के पूर्ण होने के उपलक्ष्य में वे अपनी प्रजा के हर्ष में समान रूप से सम्मिलित होने को आतुर हैं।

(राजा शतानीक और मृगावती का प्रवेश। साथ में अन्य सभासद तथा नारी-वृन्द)

जन-समूह : राजा शतानीक की जय, रानी मृगावती की जय, श्रमण धर्म की जय, स्वामी वर्धमान की जय, सती चन्दना की जय···

(दूसरी ओर से चन्दना, धनावह सेठ और मूला का प्रवेश। 'सती चन्दना की जय'—'सती चन्दना की जय'—ध्वनियां)

रानी मृगावती : (चन्दना को अंक में भरते हुए) चन्दना !—मेरी वहिन ! हाय तू यहां कैसे ? (आश्चर्य चकित) तू और दासी ? हाय ! यह कैसा वेश तेरा! (चन्दना को निहारती; स्वयं में खोई सी) वैशाली

की राजकुमारी मेरी वहिन ! मेरे राज्य में दासी! कैसी विडम्बना भाग्य की ! इसकी आँखों में व्यथा के आँसू; ओठों पर भगवान की आहार-स्वीकृति की मुस्कान ! सौन्दर्य की प्रतिमा, मुँडे हुए केशों से प्रभामय ! पाँवों में वेड़ी; किन्तु एक पग देहरी से बाहर मुक्त—और दूसरा मुक्त होने को तत्पर ! —पुराने उड़द सूप में लिए; अन्तरंग से प्रभु को निहारती; —यह स्वप्न है या सत्य ?

चन्दना : (**स्वयं को मृगावती के अंक से मुक्त करती हुई धीर-गम्भीर मुद्रा में**) मैं अब किसी की वहिन नहीं—मैं केवल चन्दना हूँ—चन्दना—भगवान की शरण में जा रही हूँ—भगवान वर्धमान—महावीर ! महावीर ! (**भाव विह्वल हो चली जाती है**)

शतानीक : कैसा उजाला प्रवेश कर रहा है मुझ में ! —दिव्य किरणें मुझे स्पर्श कर रही हैं ।—'मुक्ति' ! दासता से मुक्त हों—स्वतन्त्र हों प्राणी—नारी पूज्य है—नारी सम्बल है ।

प्रजाजन : 'सती चन्दना की जय !'

(**जयकार बोलते-बोलते सबका प्रस्थान**)

वाचक : भगवान को अनुत्तर तप और ध्यान करते साढ़े वारह वर्ष हो गये थे । वे विहार करते पहुंचे जृंभिकग्राम, (**छाया चित्र भगवान का**) जृंभिकग्राम की ऋजुकूला नदी का तटवर्ती वन-प्रान्त; भगवान, शाल-वृक्ष की छाया में शिला पर विराजमान हैं । दो दिन से उपवास है । वे शुक्लध्यान की अन्तरिका में उतरे हुए हैं । वैशाख मास की शुक्ला दशमी का अपराह्न काल है, चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रों के मध्य में है । भगवान के अन्तर का आलोक-पुञ्ज केवलज्ञान भास्कर वन, अपने सम्पूर्ण तेज में उदित हुआ, जिसमें तीनों लोक, तीनों काल स्पष्ट झलक गये । जीवन और सृष्टि के सम्बन्ध में जिज्ञासु हृदय में उठते सब प्रश्नों का संतोषजनक समाधान मिल गया ।—और भगवान प्राणी मात्र को उस ज्ञान को देने की स्थिति में आ गये, जिसके द्वारा वे संसार रूपी भवसागर को पार कर सकें । वे वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं नीति-आचार-शास्त्री सब एक साथ थे । वे अब परिपूर्ण हो गये ।

(**श्रावक-गण पूजा-स्वर में गाते हुए मंच पर से गुरजते हैं**)

शुकल दसें वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना ।
केवल लहि भवि-भव-सर तारे, जजों चरन सुख भरना ।
नाथ मोहि राखो हो सरना ।।

चौदहवाँ दृश्य

(मंच पर प्रकाश। निताशा और रीना का प्रवेश)

रीना : निताशा ! पूजा और भक्ति के साथ भगवान के भक्तजन केवल-ज्ञान प्राप्ति होने की अपूर्व घड़ी के प्रति अर्घ्य समर्पित कर रहे हैं। भगवान ने स्थापना की कि छह द्रव्य और सात तत्त्वों के मूल स्वरूप को समझने से त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं और घटनाओं का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

निताशा : वह किस तरह ?

रीना : छह द्रव्य यानी जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन छहों के संयोग से भौतिक जगत् का अस्तित्व है। जीवन का मूल आधार है जीव या आत्मा—अथवा चेतन तत्त्व, जो जुड़ा हुआ है अजीव या जड़ पदार्थ से जिसे जैन-शास्त्रों में पुद्‌गल कहा गया है। यह मूर्तिमत्ता या आकार प्रदान करने वाले परमाणुओं का समूह है। तीसरा है धर्म-द्रव्य यह जीव और अजीव के सम्मिश्रण में निहित वह गुण है जो उसे गमन करने या बढ़ने की सामर्थ्य देता है। चौथा है उसी में मिश्रित अधर्म-द्रव्य जो स्थिर होने या रोकने का कारण है। ध्यान देने की बात है कि धर्म-अधर्म गति और स्थिति के अर्थ में हैं—पाप-पुण्य के अर्थ में नहीं। आकाश वह द्रव्य है जिसमें वस्तु को अवगाह मिलता है—जिसमें सब कुछ समाया है। और छठा द्रव्य है काल जो अतीत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ से पूर्व-पश्चात् की बुद्धि उत्पन्न करता है और समय-परिवर्तन का बोध देता है।

निताशा : बहुत सुन्दर!…आधुनिक दर्शन-शास्त्र भी तो वस्तु के अस्तित्व की धारणा इसी तरह कराता है।

रीना : अवश्य, और यदि सिद्धान्तों की व्याख्या में सूक्ष्म अन्तर हो भी, तो वह तो व्याख्याकारों की अपनी-अपनी दृष्टि है।

निताशा : अच्छी रीना ! अब बता कि सात तत्त्व क्या हैं ?

रीना : इस प्रश्न के उत्तर में अपने गुरु के स्वर मेरे कानों में गूंज रहे हैं, उन्होंने कहा था—सात तत्त्व हैं : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। जीव और अजीव तो सृष्टि के मूल

तत्त्व हैं ही। इनकी परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है जिसे कर्म होना कहते हैं—या शास्त्रों के शब्दों में आस्रव होना। कर्मों के होने से आतमा या चेतना के ऊपर आवरण पड़ता जाता है, उसे बन्ध कहते हैं। इन बन्धों को रोकने के लिए जो संयम और साधना की जाये उसे संवर कहते हैं। और जिन तप और कष्ट सहन द्वारा संचित कर्म-बन्धों को जर्जर कर झार दिया जाये उसे निर्जरा; और जब यह निर्जरा प्रक्रिया पूरी हो जाये तो मोक्ष या मुक्ति प्राप्त होती है। यही सातवाँ तत्त्व जीवन का उच्चतम ध्येय है।

निताशा : अरी रीनू ! यह तो जैसे स्वच्छ दर्पण में जीवन का प्रतिबिम्ब दिख गया हो। समझने में कितना सरल और गहनता में कितना मार्मिक !

रीना : केवलज्ञान-प्राप्ति के बाद भगवान महावीर इन तत्त्वों पर आधारित जीवन-मार्ग का दर्शन करने हेतु, उपदेश देने अनेक प्रदेशों में विहार करने लगे। यही धर्म-चक्र-प्रवर्तन है। **(छायाचित्र)** उपदेश सुनने के लिए जो सभा जुड़ती थी, वह समवसरण कहाता है **(छायाचित्र)** क्योंकि उसमें सब प्राणी समान भाव से एकत्र होते थे—न केवल राजा, प्रजा, और प्रत्येक वर्ग के मनुष्य बल्कि पशु-पक्षी तक भी। तीनों लोकों के सभी तरह के प्राणी भगवान की देशना सुनने उस सभा में एकत्रित होते थे। केवल ज्ञान के बाद भगवान का प्रथम भव्य समवसरण राजगृह में संयोजित हुआ। नीतू ! आ, मनोबल के पंख लगा हम वहाँ पहुँचने की उड़ान भरें।

(मंच पर अन्धकार)

पन्द्रहवाँ दृश्य

(वाद्य-संगीत। मंच पर प्रकाश। जन-समूह का प्रवेश)

पहला स्वर : कैसा धन्य भाग्य है हमारा सुबाहु ! कि भगवान आज हमारे इस राजगृह नगर में पधारे और विपुलाचल पर विराजे है। हमें अवसर प्राप्त हुआ है इस महान सभा में उनका उपदेश सुनने का। अपने आकुल मन की बात क्या कहूँ भाई ! ···जब से तेरी बहिन मनहारी साथ छोड़ सुरग सिधार गयी, तब से जनम-मरन की बात से इतर-उतर सूझता ही नहीं।

दूसरा स्वर : ठीक कहते हो वन्धु ! मेरा भी मन क्या कम दुखी है—एक पल को चैन नहीं। ...पर, भगवान की वाणी सुनकर सारी आकुलताएँ मिट जायेंगी। दर्शन से ही आधे दुख दूर हो गये। न जाने क्या जादू है उनमें कि सामने आते ही माथा झुक जाता है। प्रश्नों का उत्तर जैसे अपने अन्दर से मिल जाता है उनके दर्शन से ही।

तीसरा स्वर : पर भद्र ! भगवान की वाणी कव खिरेगी ? समवसरण में आये घड़ियाँ वीत गयीं, पर भगवान मौन हैं। आलोक किरणें वरस रही हैं। पर जो भी है, घर वापिस जाने को पैर ही नहीं उठते। उनके मुखारविन्द की ज्योति अन्तर में पैठ गयी है। अव अंधेरे में नहीं जाऊँगा।

चौथा स्वर : सुव्रत ! सारी जनता और नगर-निवासी वहुत वेचैन हैं कि भगवान की कल्याणकारी वाणी कव खिरेगी ? मौन क्यों हैं भगवान ? दिनों पर दिन वीतते जा रहे हैं प्रतीक्षा में। अव जीवन ही क्यों न वीत जाये, यहाँ से वापसी नहीं। कल्याण जैसे उनकी उपस्थिति से ही झर रहा है।...उधर देखो तो ! कौन आ रहे हैं, मैं ठीक ही पहचान रहा हूँ न—वह श्री इन्द्रभूति गौतम और उनके पाँच सौ शिष्यों का समूह समवसरण सभा की तरफ जा रहा है। (हर्षित हो) कैसी अपार भीड़ उमड़ रही है पीछे-पीछे !

पहला स्वर : क्या कहा वन्धु ? इन्द्रभूति गौतम आ रहे हैं ?

दूसरा स्वर : एँ ? इन्द्रभूति गौतम प्रकाण्ड विद्वान्, वेद-वेदांग में पारंगत, महान यज्ञों के अनुष्ठाता !

तीसरा स्वर : यह तो प्रचण्ड शास्त्रार्थी हैं। ये अवश्य तीर्थंकर महावीर के मत को, उनकी मान्यताओं को चुनौती देने आये हैं।

चौथा स्वर : तव तो वड़ा आनन्द आयेगा इस विवाद में। भगवान को अपना मौन भंग करना ही होगा। चलो उधर चलें। (प्रस्थान)

(इन्द्रभूति गौतम का प्रवेश)

इन्द्रभूति गौतम: (स्वगत) मैं इन्द्रभूति गौतम, सोमिल व्राह्मण के महायज्ञ में सम्मिलित होने अपने शिष्य-मण्डल के साथ मगध के गोवर गांव से चल के आया कि देखा भीड़ उधर विपुलाचल की ओर जा रही है। सुना है कि वर्धमान ने कैवल्य प्राप्त किया है। यह कैसे अवसर का लाभ उठाया वर्धमान ने कि हजारों नर-नारियों का समूह यज्ञ में न आकर उस ओर जा रहा है।...केवलज्ञान ! (व्यंग्य के स्वर

में) देखूँ तो यह क्या कुचक्र है। मेरे लिए भी यही अवसर है। श्रमणनेता पार्श्व के समय से ही जुटे हुए हैं उनके शिष्य यज्ञ-संस्था को उखाड़ने में। अब इस नये नेता को पराजित कर अपने धर्म में दीक्षित करूँ।

(छायाचित्र उभरता है मानस्तम्भ का)

गौतम : अच्छा ये है धर्म-सभा का द्वार। यह भव्य स्तम्भ, आकाश को छूता हुआ। ओह ! मानस्तम्भ ! इसे देखकर मन शंकालु हो रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरा ही ज्ञान चुनौती में पड़ जाये ? **(छायाचित्र की ओर आगे बढ़कर दूर दृष्टि करते हुए)** ओह ! वह बैठे हैं महावीर। अद्‌भुत तेजपुञ्ज··· ! देखना है इनके ज्ञान का प्रकाश कितना है !

(मंच पर प्रकाश। जनसमूह का प्रवेश)

पहला स्वर : एं—इन्द्रभूति ! भगवान के सामने !

दूसरा स्वर : अरे, यज्ञ छोड़ कर इधर आ गये !

तीसरा स्वर : सुना है इनके भाई अग्निभूति और वायुभूति भी आ रहे हैं इधर अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के साथ।

चौथा स्वर : यह तीनों विद्वान, इनके पन्द्रह सौ शिष्य—और महावीर अकेले ?

(हल्की सी मेघ-गर्जना का स्वर)

दर्शक : एँ ! ये तो भगवान की वाणी गूँजी—सुनो ! सुनो !—

(स्वर पार्श्व से आते हुए। भीड़ ध्यान से शब्दों को सुन रही है)

ध्वनि : **(भगवान की वाणी गूँज में)** गौतम इन्द्रभूति ! तुम आ गये ?

इन्द्रभूति : **(स्वगत)** हैं मेरा नाम ? कैसे जाना ? शायद मेरी ख्याति··· ! **(प्रकट में)** हाँ भंते ! मैं आ गया।

ध्वनि : **(गूँज में)** तुम्हें जीव के अस्तित्व में सन्देह है गौतम ?

इन्द्रभूति : **(स्वगत)** यह प्रश्न ही तो मेरे मन का काँटा है···इन्होंने कैसे जाना ? **(प्रकट में)** हाँ भंते !

ध्वनि : **(गूँज में)** तुम 'हो' यह तुम्हारा अस्तित्व है। इस वर्तमान अस्तित्व का एक अतीत है और एक भविष्य। पूर्व और आगामी से ही तो मध्य सधता है। इस जीव का वह अस्तित्व जो हो चुका, और जो होगा, उसका बोध इन्द्रियों से भी परे है। इसीलिए उसका साक्षात्-कार अतीन्द्रिय ज्ञान से होता है।

गौतम : (स्वगत) यह मेरे मन-प्राण में कैसी बिजली-सी कौंधी ! सब आलोकित हो गया। (प्रकट में) भंते। मैं प्रणत हूँ। मैं आत्मा का साक्षात् करना चाहता हूँ। मुझे अपनी शरण में लें।

सामूहिक स्वर : भगवान महावीर की जय—

जनता के स्वर : सन्मति वर्धमान की जय—

(गौतम एक उच्च आसन पर खड़े होकर जन-समूह के समक्ष बोलते हैं। उनके पीछे ऊँचे स्थान पर एक प्रभामण्डल है जो

महावीर वाणी (गूंज) : जो इंदिए जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आद,
तं खलु जिदिदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।

गौतम : जो इन्द्रियों को वश में कर यह बोध पा जाये कि आत्मा शुद्ध-ज्ञान स्वरूप है, उसे निश्चय ही साधु-जन इन्द्रियों का विजेता कहते हैं।

महावीर वाणी (गूंज):

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए-परत्थ य ।।

गौतम : अपने आपको जीतो। अपने आपको जीतना ही वास्तव में दुर्गम है। अपने को जीतने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी होता है।

राजा श्रेणिक : अपने को जीतने के लिए आचरण क्या हो भन्ते ! प्रकाश डालिये इस तथ्य पर ।

महावीर वाणी (गूंज) :

पाणाइवायमलियं चोरिक्कं मेहुणं दवियमुच्छं।
कोहं माणं मायं लोभं पिज्जं तहादोसं।
कलहं अब्भक्खाणं पेसुन्नं रइ अरइ समाउत्तं,
परपरिवायं मायमोसं मिच्छत्तसल्लं च ।।

गौतम : हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, दोषारोपण, चुगली, कपटपूर्ण व्यवहार और मिथ्या-दर्शन रूपी शल्य ये १८ पाप हैं। इन से विमुक्त रहना ही वह आचरण है, जिससे स्वयं को जीता जा सकता है।

महावीर वाणी (गूंज) :

आया वयाही चय सो अमल्लं, काने कसाही कनियं खु दुक्खं।

गौतम : आत्मा को तपाओ, सुकुमारता का त्याग करो, कामना को दूर करो, निश्चय ही दुख दूर होगा।

राजा श्रेणिक : धन्य भाग्य भगवन् ! आपके चरणारविन्द में नतमस्तक हूँ। भगवन् आप धर्म-यात्रा में जहाँ-जहाँ विहार करेंगे, मैं आपका अनुगत

हो, समवसरण में प्रस्तुत हो, धर्म की अवगाहना कर आत्मा को पुलकित करूँगा।

चन्दना : भगवन्त ! चन्दना श्री-चरणों में नमित है। भगवन् ! कौशाम्बी में दासी रूप में मुझ चन्दना से कोदों के दाने आहार में ग्रहण कर आपने मुझे भव-भव के पापों से मुक्त किया। आज समवसरण में खिरी अमृतवाणी ने आत्मा के कण-कण को ज्योतित कर दिया। आर्यिका-संघ में परिव्राजित कर धर्म की शरण में लें भगवन् ! मुझे दीक्षा दें।

रानी चेलना : भन्ते ! महाराज श्रेणिक की महारानी होने के नाते इस चेलना ने लौकिक वैभव की चरम-सीमा भोगी है। आपके अमृत वचनों ने अन्तरंग में उमड़ती उदासीनता को अलौकिक भव्यता का मार्ग दिखाया है भगवन् ! आत्मा की समृद्धि हेतु, मुझे अपनी शरण में लें। मुझे दीक्षित करें।

रानी मृगावती : मगधराज शतानीक की पत्नी मृगावती, चरणों में वन्दना करती है भगवन् ! मैं अपनी बहिनों—चन्दना और चेलना का अनुसरण करती, आपकी शरण में दीक्षित होना चाहती हूँ—

अभय और मेघ : महाराजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार और मेघ कुमार, दोनों आपकी शरणागत हैं भगवन् ! हमें दीक्षित कीजिए।

कई नर-नारी : हमें दीक्षा दीजिए भगवन्। हम जिन धर्म की शरण में आना चाहते हैं।

सामूहिक स्वर : चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

गौतम : धर्म की प्रभावना अपार है। भव्य जीवों का समागम है। प्रभु की अमृतवाणी खिर रही है।

महावीर वाणी : (गूंज) आत्मोन्नति के प्रशस्त पथ का अनुसरण करने वाले महाराज श्रेणिक बिम्बसार अपने धार्मिक संस्कारों की प्रबलता से, भविष्य में होने वाली नयी २४ तीर्थंकर परम्परा के आदि-प्रवर्तक होंगे। उन प्रथम तीर्थंकर का नाम होगा महापद्म।

(पटाक्षेप)

सोलहवाँ दृश्य

(पूनिया का घर। पत्नी सुभद्रा और पूनिया। पूनिया चरखा कात रहा है और सुभद्रा सूत लपेट रही है। पूनिया चरखा कातते गाथा गुनगुना रहा है।)

पूनिया : लोभो लणे विजादो जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं।
रइद मुउडादिसंगस्स वि हु ण पावं अलोभस्स।।

सुभद्रा : अजी ओ पूनिया ! क्या गुनगुना रहे हो—बोलते ही नहीं। ऐसे डूब कर रुई कात रहे हैं कि पता ही नहीं मैं कब की खड़ी हूँ, तुम्हें कुछ खबर भी है ?—ये तो महावीर भगवान् की सभा में क्या हो आये, उन्हीं के राग में खो गये हैं। जब देखो वही राग अलापते रहते हैं। मैं पूछती हूँ—कि दिन में १०० पूनी कात कर दाल-भात खाने भर से ही काम चल जायेगा क्या ? कुछ हाथ-पैर मारो कमाने को—पर कौन सुनता है मेरी ? बस यही गुनगुनाहट—

पूनिया : लोभ बढ़ने से मनुष्य करणीय और अकरणीय का चिन्तन नहीं करता भद्रे !—वह अपनी मृत्यु की भी परवाह न करता हुआ धन पाने के लिए दु:साहस कर बैठता है। अपरिग्रह महान् है भद्रे ! अपरिग्रह का अभ्यास कर भद्रे ! अपने ग्राम के मम्मण को जानती है न ?

सुभद्रा : हाँ श्रेष्ठी मम्मण ? अरे पूनिया जी ! मम्मण श्रेष्ठी को कौन नहीं जानेगा। उसके वैभव का क्या ठिकाना ? सुना है कल महाराज श्रेणिक स्वयं उसके सोने और रत्नों से सजे चमत्कारी बैलों को देखने उसके घर गये थे।

पूनिया : हाँ भद्रे ! उस प्रसंग की मूल बात सुन। कल से पहले वाली रात जब वर्षा और आँधी का तूफान उठा, उस समय महाराजा और रानी चेलना ने देखा कि उस काल-रात्रि में एक आदमी नदी के तट पर लंगोटी पहने खड़ा, नदी में प्रवाहित लकड़ी के लट्ठों के टुकड़ों को संजो रहा है। रानी ने महाराज से कहा, "आपके राज्य में लोग बहुत गरीब हैं, आपका प्रशासन गरीबी नहीं मिटा सका महाराज !" महाराज को यह आरोप चुभ गया। उन्होंने उसी समय आदमी भेज कर नदी के तट पर खड़े व्यक्ति को बुलवा भेजा। भद्रे ! जानती हो वह कौन था ?

सुभद्रा : होगा कोई गरीब लकड़हारा—भूख से मारा। पर अपने नगर में हम से गरीब कोई नहीं है पूनिया जी।

पूनिया : अरी भद्रे ! यही तो तेरा मति-भ्रम है कि हम से गरीब कोई नहीं। अरी वह था—वह था—धनी श्रेष्ठी मम्मण।

सुभद्रा : मम्मण ? वह वहाँ क्या कर रहा था ऐसे कुसमय में ? नहीं वह क्यों होगा ?

पूनिया : क्यों था वह वहाँ, इसका उत्तर पाने ही महाराज कल मम्मण के यहाँ स्वयं गये। उसका वैभव देख महाराज आश्चर्य में डूब गये, बोले—ठीक कहते थे मम्मण ! जिस बैल की जोड़ी बनाने के लिए तुम तूफानी रात में लकड़ी बटोर रहे थे, उसकी जोड़ी का बैल मेरी गोशाला में नहीं। हल जोतने के लिए या रोटी कपड़ा जुटाने के लिए उपयोगी बैल मेरी गौशाला में मिलता, पर तूफानी रात में बहती आई लकड़ी के टुकड़ों को जोड़कर बनाया निर्जीव बैल जो सोने से मंढा हो, रत्नों से जड़ा हो—वह तुम्हारे जैसे कला-संग्रही और कला-वैभवी के पास ही हो सकता है मेरे पास नहीं।

सुभद्रा : पूनिया ! यह घटना सुनकर मेरे तो अन्तरंग तक के रोम खड़े हो गये। मम्मण श्रेष्ठी और काष्ठ के बैल के पीछे तूफानी रात में लंगोटी पहने नदी में ! तुम तो इस घटना को ऐसे सुना गये जैसे तुम्हारी आँखों देखी, कानों सुनी हो।

पूनिया : आँखों देखी तो नहीं भद्रे ! पर भगवान् महावीर के समवसरण में महाराज-महारानी द्वारा कही गई को कानों से अवश्य सुना—सब ने सुना।

इस परिग्रह से भिन्न है मानसिक परिग्रह, जो अन्तरंग है, और आत्मा के गुणों को ढंकने में वह अधिक प्रवल है। चैतन्य या जीवात्मा से परे जो भी है, उसमें आसक्ति भाव होना, मोह या मूर्च्छा भाव होना अन्तरंग परिग्रह है। इस दृष्टि से शरीर परिग्रह है, संचित कर्म परिग्रह हैं, अर्थ और वस्तुएँ तो परिग्रह हैं ही। पर जिसका मन मूर्च्छा से या लगाव से शून्य है, उसके लिए वस्तु केवल वस्तु है, उपयोगिता का साधन, परिग्रह नहीं।

सुभद्रा : पूनिया ! इतनी कठिन वात मैं कैसे समझूँ ! क्या-क्या वोल गये तुम ? धुनिये हो तुम और धुन में रम गये, वह गये—

पूनिया : अरी भोली भद्रे ! समझ ले कि भगवान् का कहना है कि दाल-रोटी खाकर जी को सन्तोष देने से शांति मिलती है। ज्यादा हाथ-पैर मार कर धन कमाने को कहेगी और उसमें मन को रमायेगी तो तृष्णा वढ़ती जायेगी, आकुलता वनी रहेगी—मन कभी सुखी नहीं होगा।

(श्रावक नर-नारियों के स्वर पार्श्व से। पूनिया और सुभद्रा हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से सुनते हैं।) (मंच पर अन्धेरा)

श्रावकों के स्वर : महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।
महामोहातंक-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषग्
निरापेक्षो वन्धुर्विदित-महिमा मंगलकर:।
शरण्य: साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।

श्रावकों के स्वर : महामोह की व्याधि वैद्य वन दूर हटाते,
प्राणिमात्र के वन्धु जगत का पाप मिटाते।
भवभयहारी प्रणत जनों को सुखी वनायें,
महावीर वे नयन मार्ग से मन में आयें।

वाचक : भगवान् का मंगल विहार जिन-जिन प्रदेशों और जन-पदों में हुआ—उन कौशल, काशी, विदेह, मिथिला, श्रावस्ती, चम्पा, साकेत, नालन्दा, मगध पंचाल, शौरसेन आदि भू-खण्डों के शासक, मंत्री, सेनापति, पुरोहित, विद्वान्, श्रेष्ठीगण और सामान्य जनता—सव भगवान् द्वारा प्रवर्तित अहिंसा-मूलक श्रमण धर्म का श्रद्धान करते गये। समवसरण की सभाओं में आस-पास के ग्रामों, नगरों से हजारों की संख्या में नर-नारी उपस्थित होते थे। भगवान् प्रत्येक की जिज्ञासाओं का समाधान करते, सुख और शान्ति का वातावरण वनाते विहार कर रहे थे। स्थान-स्थान पर समवसरण रचे जाते—सभाएँ होतीं—

सत्रहवाँ दृश्य

(धर्म-सभा का दृश्य। भामंडल पीछे है और सामने गौतम आसीन हैं। आस-पास साधु-साध्वी उपस्थित हैं। गृहपति आनन्द भी सभा में उपस्थित हैं।)

आनन्द : आनन्द का प्रणाम श्री-चरणों में निवेदित है भगवन् ! आपके सार-गर्भित वचनामृत से अभिभूत हूँ। किन्तु, जिन परिस्थितियों के वशीभूत हूँ उनके निदान का प्रार्थी हूँ। भगवन् 'अहिंसा' का मूल मंत्र आपने दिया, किन्तु उसका पालन किस प्रकार किया जाये ? भौतिक जगत् के विकास में, जीवन जीने के लिए, खाते-पीते, चलते-फिरते, धनोपार्जन करते, खेती-बाड़ी करते सब ही कार्यों में स्थूल और सूक्ष्म जीवों का घात निहित है। इस हिंसा से कैसे बचा जाये ?

महावीर वाणी (गूंज) :

जीववहो अप्पवहो जीवदया होदि अप्पणो हु दया।
विसंकटओव्व हिंसा, परिहरिदव्वा तदो होदि ॥

गौतम : किसी भी प्राणी का वध, अपनी आत्मा का ही वध है, किसी भी प्राणी की दया, आत्मा की ही दया है, इसीलिए हिंसा का विष-कंटक के समान परिहार करना चाहिए। जीवन जीने में, वनस्पति की हिंसा हो ही जाती है। जल, वायु, पृथ्वी और आकाश में व्याप्त प्राण-परिमाणों के घात से बचा नहीं जा सकता। वह प्रारम्भी हिंसा होती है, वह हो जाती है, जान-बूझकर की नहीं जाती। अनिवार्य रूप से हो जाने वाली ऐसी हिंसा को जितना कम कर सको करो। आनन्द ! तुम्हारा कुटुम्ब बड़ा है, विशाल खेत हैं, हजारों गाय-भैंसे हैं। सैकड़ों कर्मचारी तुम्हारे अधीन काम करते हैं। उनके प्रति निर्मम न होकर, संकल्प पूर्वक पशुओं को बिना शारीरिक पीड़ा पहुँचाए, पूरा खाना-पीना देकर, अधिक भार न लाद कर, उनका अंग छेदन न कर, बन्धन से जितना मुक्त रख सको रख कर, और बेकार हो जाने पर उनका वध न कर तुम अहिंसा का पालन कर सकते हो। हल चलाने, खेत जोतने और उद्योग करने में जो हिंसा निहित है वह उद्योगी हिंसा है। उसको अपनी सावधानी से

जितना घटा सकते हो घटाओ। हिंसा का सूक्ष्म रूप मन के भीतर होता है। भाव-हिंसा राग और द्वेष से उत्पन्न होती है जो तीर-तलवार से भी अधिक घात करती है। अहिंसा का पालन मन, वचन और काया तीनों से होता है।

आनन्द : भगवान् की वाणी मेरे अन्तस्तल तक पहुँचाने के लिए गौतम गणधर के प्रति मैं विनीत हूँ। भंते, मैं गृहस्थ हूँ नाना प्रकार के अन्याय, शत्रुता, और कपट की चपेटें इतनी तीव्र होती हैं कि बदला लेने की या दंडित करने की भावना उग्र हो उठती है। पाप-पूर्ण व्यवहार के प्रति हिंसा भाव हो जाना स्वाभाविक है, ऐसी परि-स्थिति में क्या किया जाये ?

गौतम : आनन्द ! जिस प्रकार विशेष परिस्थितियों में आरम्भी और उद्योगी हिंसा को—व्यक्ति के विवेक-बुद्धि की सीमा में बाँध कर क्षम्य कहा है उसी प्रकार अनीति के विरोध में शुभ उद्देश्य से न्यूनतम हिंसा क्षम्य है। त्याज्य है संकल्पी हिंसा जो जान-बूझ कर प्रतिहिंसा के लिए या स्वार्थ-वश की जाये।

आनन्द : भन्ते ! विशेष परिस्थितियों में गृहस्थ व्यक्ति अपने विवेक-बुद्धि को कैसे प्रयोग में लाये—इसका पथ-प्रदर्शन करने की कृपा करें।

गौतम : भगवान के चिन्तन में यह समस्या स्पष्ट थी, इसीलिए उन्होंने गृह-त्यागी साधुओं के लिए न केवल अहिंसा को बल्कि सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के व्रत को महाव्रतों की भाँति अर्थात् उन की चरम सूक्ष्मता में पालन करने का आदेश दिया, और गृहस्थ के लिए उन्हीं व्रतों को अणु रूप में अर्थात् अनिवार्य रूप से हो जाने वाली सीमा और मर्यादा के अनुरूप पालन करने की विस्तारपूर्वक व्यवस्था की है।

आनन्द : भन्ते ! मेरे अन्तस् में मानस के ज्ञान-द्वारों से ज्योति प्रवेश कर रही है। भगवान की वाणी द्वारा मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ। अब मैं आश्वस्त भाव से अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूँगा, यह बल प्राप्त हुआ।

पार्श्व स्वर (श्रावकों के) :

जिनवचन-रसायनं दुरापं, श्रुतियुगलांजलिना निपीयमानम्।
विषय-विष-तृषामपास्य दूरं, कमिह करोत्यजरामरं च भव्यम्॥

(मंच पर अन्धेरा)

अठारहवाँ दृश्य

(विद्वत् सभा का आयोजन। मंखलि गोशाल, पूर्ण कश्यप, केश-कम्बली, प्रकुद्ध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त, श्रमणकेशी आदि दार्शनिकों की परम्परा का प्रतिनिधित्व या तो वे स्वयं कर रहे हैं या उनके शिष्य जो उनके नामधारक हैं। विद्वानों के लिए आसन बिछे हैं और जय जयकार की ध्वनि गूंज रही है वायु मंडल में। ऐसा आभास कि सभागार के बाहर बहुत भीड़ है। भगवान पार्श्व की जय, कुमार श्रमण-केशी की जय, आजीवक प्रवर गोशालक की जय, गुरुवर प्रकुद्ध कात्यायन की जय, अजितकेश कम्बली की जय, श्री संजय वेलट्ठिपुत्त की जय, गौतम गणधर की जय, महावीर स्वामी की जय–आदि जयकार ध्वनियाँ।)

(आजीवक प्रवर महापण्डित मंखलि गोशालक का प्रवेश)

मंखलि गोशालक (स्वगत) : धार्मिक चेतना का कैसा अद्भुत संगम-स्थल है यह श्रावस्ती ! यहाँ मुझ, गोशालक का भी स्वागत जय-ध्वनि के साथ है, यद्यपि मैं वर्धमान का साथ छोड़कर उनके विपरीत सिद्धान्तों का पोषक, आजीवक नेता हूँ। श्रावस्ती के जन-मन में महावीर ने ऐसा मंत्र फूंका है कि यहाँ सम्प्रदायों का मत-भेद नागरिकों के मन में वैषम्य का भाव लाना भूल गया है। आखिर इसका क्या रहस्य है ? भारतीय धर्म की दो मुख्य धाराएँ श्रमण और वैदिक, आज तीन सौ तिरेसठ धर्म सम्प्रदायों में विभक्त हैं। आज की इस विद्वन्मण्डली में श्रमण सम्प्रदायों के प्रायः सभी मुख्य प्रतिनिधि उपस्थित हैं। उन सबके दार्शनिक चिन्तन का समन्वय करने का दावा है महावीर का। हमें देखना है कि कैसे सम्भव है यह समन्वय ?
(एक एक कर विद्वानों की जय का नारा लगता है और वे सब आकर अपना-अपना आसन ग्रहण करते हैं। मध्य का आसन रिक्त है)

श्रमण केशी : प्रबुद्ध विद्वद्गण ! जगत् और परमसत्ता का अन्वेषण, एवं अविनाशी सुख की खोज हम सबके चिन्तन का विषय रहा है। आज जिस उद्देश्य से हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं, वह आप सबको

विदित है। मैं यह उचित समझता हूँ कि श्री गौतम गणधर मध्य का आसन ग्रहण करें और सभा का संचालन करें।

गौतम : यदि आप सबकी यही इच्छा है।

(वह मध्य का आसन ग्रहण करते हैं)

मखलि गोशाल : (अहंभाव से) मैं सर्वप्रथम अपनी मान्यता आपके सम्मुख रखता हूँ।

गौतम : (प्रसन्न मुद्रा में) अच्छा, मंखलि गोशाल ! आप ही कहें।

मंखलि गोशाल : मेरी मान्यता है कि जो कुछ होना है, वह पूर्व निश्चित है। मनुष्य अपने प्रयत्न से उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता। श्रमण महावीर मेरे इस नियतिवाद को स्वीकार भी नहीं करते और खण्डन भी नहीं। इस चतुराई से वे मेरे शिष्यों और जनता को भ्रम में डाल कर अनिश्चित धर्म-मार्ग पर ला रहे हैं। क्या यह उचित है, पूर्णकश्यप ?

पूर्ण कश्यप : मंखलि गोशाल ! यदि आपकी मान्यता सत्य है कि जो होना है वही होगा, तब तो महावीर के उचित-अनुचित मार्ग पर ले जाने से अन्तर ही क्या पड़ता है ? मेरी दृष्टि में तो व्यक्ति न पुण्य करता है न पाप, न अच्छा न बुरा, मनुष्य के कृतित्व का प्रश्न ही नहीं है। इसलिए यदि मेरे अक्रियावाद को मानें तो जीवन सरल और सुगम हो जाय—जटिल दार्शनिक गुत्थियों से मुक्त।

केश कम्बली : यदि मुझ अजित केश कम्बली की बात मानें तो सब विवादों से नितान्त मुक्त हो जायें। मेरा विश्वास है कि जो कुछ है, इसी लोक में इसी शरीर के साथ है। शरीर के नाश हो जाने पर कुछ नहीं रहता। मनुष्य पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु का पुतला है—बस और कुछ नहीं।

प्रकुद्ध कात्यायन : केश कम्बलिन् ! आपने जिन चार पदार्थों के नाम लिए हैं उनमें तीन और जोड़ें—जीव, सुख और दुख। सातों पदार्थ अचल हैं, एक दूसरे को नहीं सताते। आप क्या कहते हैं संजय बेलट्ठिपुत्त !

संजय वेलट्ठिपुत्त : मैं कहूँगा क्या ? कहने की बात ही क्या ? इतनी विविध मान्यताओं को सुनकर भी क्या आप मेरे दर्शन की निष्पत्ति पर नहीं पहुँचते कि जहाँ जो कुछ है अनिश्चित है, संशय-ग्रस्त है। सब अकल्पित है, अतर्क्य है। वास्तव में महावीर का अनेकान्त-वाद भी, मेरी दृष्टि में, इसी अनिश्चयवाद का दूसरा रूप है। कहिये भंते गौतम ! यही है न अनेकान्तवाद ?

गौतम : भगवान महावीर के अनेकान्तवाद दर्शन की विशेपता ही यह है कि उसमें आप सबकी अलग-अलग विरोधी बातों का समाहार है,

सबका समन्वय है। अनेकान्त के सिद्धान्त द्वारा विभिन्न दृष्टि-कोणों को केन्द्रित कर वस्तु को पूर्ण अखण्डता में देखने का प्रयास है। वस्तु के अनन्त पर्याय हैं, पर्यायों को देख कर ही हम वस्तु को वैसा नाम या गुण प्रदान करते हैं। यदि अव्यक्त पर्यायें प्रकट हो जायें तो हमें विरोधाभास लगता है। जो व्यक्त है वह एकांगी है या कहना चाहिए कि उस विशेष समय, स्थिति और संदर्भ के सापेक्ष में वह है। अन्यथा वह कुछ और भी है। विचार में सापेक्षता का सिद्धान्त ही अनेकान्त है और व्यवहार या वाणी में उस दृष्टि से कहना स्याद्वाद है। अखण्ड का बोध तो सत्य होता ही है। पर खण्ड का बोध भी सत्य होता है, यदि उसके साथ 'स्यात्' अर्थात् 'अपेक्षा से' शब्द का भाव जुड़ा हुआ हो। श्रमणकेशी ! भन्ते ! आपने भगवान महावीर से तथ्य को कैसे ग्रहण किया, उसका विवेचन प्रस्तुत करें।

श्रमणकेशी : इस विद्वत्-परिषद् के गण-मान्य दार्शनिक नेताओं के सम्मुख भगवान के समन्वयवादी मंत्र का रहस्य और सत्य स्वयं उद्घाटित होता गया है। जैसे दही का मंथन करें तो मक्खन निकालते समय बिलोने वाला एक हाथ पीछे, और दूसरा आगे आता है, उसी तरह सत्य को पाने के लिए, मन के मंथन-क्रम में कभी कुछ खण्ड-सत्य ऊपर तल पर आता है, कभी दूसरा खण्ड-सत्य निचले तल तक। प्रत्येक कण का मंथन होने के पश्चात् ही नवनीत ऊपर तैर कर आता है। इसी तरह विभिन्न एकांगी दृष्टियों के मंथन से या अनेकान्ती दृष्टि की प्राप्ति होने पर ही सच्चे ज्ञान का नवनीत हाथ लगता है। श्रमण अजित धर्म के स्वतन्त्रचिंतको ! क्या आपको इस दृष्टि में निहित बौद्धिक अहिंसा का एक नया आयाम खुलता दृष्टिगत नहीं होता ?

केशकम्बली : भन्ते ! यह तो विचित्र रहस्य को उद्भासित करता सिद्धान्त है। व्यक्ति की सरल सहज बुद्धि को स्वीकार कर आग्रही मान्यताओं से मुक्ति देता, स्वच्छ वायु-सा प्राण-संचारक सिद्धान्त ! विचार और व्यवहार में इतनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का मुक्त आभास ! यह तो जीवन जीने का अमोघ मंत्र है। आश्चर्य ही क्या जो श्रावस्ती, और श्रावस्ती के अतिरिक्त जिस-जिस प्रदेश में महावीर भगवान का देशना-भ्रमण हुआ है, वहाँ के मनुष्य— नर-नारी, मानसिक और शारीरिक पीड़ा और तनावों से मुक्त हो रहे हैं।

(पार्श्व से महावीर भगवान की जयकारों के स्वर। सभा का विसर्जन। एक-एक कर सभी विद्वानों का प्रस्थान जयकार-स्वरों के साथ-साथ। मंच पर अकेले गोशालक रह जाते हैं। वह चिंता की मुद्रा में खड़े हैं)

गोशालक : (स्वगत) आश्चर्य ! आश्चर्य ! अवाक् हूँ, स्तब्ध हूँ महावीर की समन्वय दृष्टि से। किन्तु मेरा दम्भ ? मेरी अपनी सत्ता ?… कैसे झुकूं ? कैसे करूँ समर्पित अपने उस अस्तित्व को जो मुझ पर छाया हुआ है, मुझे ग्रसित किये हैं ?तो क्या मैं तीर्थंकर नहीं कहाऊँगा ? क्या केवल वर्धमान महावीर ही इस पद को प्राप्त कर गये ? (चिन्तातुर और निराश जैसी मुद्रा में प्रस्थान)

अन्तिम दृश्य

(श्रावक-गण दो-दो करके विविध प्रान्तों की वेश-भूषा में प्रवेश करते हैं और मंच पर विनय-मुद्रा में स्थान लेते हैं स्वर उभरते हैं।)

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

वाचक : अर्हत् केवली होने के पश्चात् ३० वर्ष तक भगवान महावीर ग्रामानुग्राम–एक जनपद से दूसरे जनपद तक समवसरण सभा करते और अपने अमृत-प्रवचनों से जन-मानस को सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का बोध कराते, पावा में पहुँचे। **(देश-प्रदेशों के राजे-महाराजे, रानी-महारानियों, साधु-साध्वियों तथा अपार जन-समुदाय का प्रवेश)** भगवान की आयु इस समय ७२ वर्ष की थी। निर्वाण समीप है यह उन्हें ज्ञात था। वहाँ अनेक सरोवरों से युक्त वन में वे एक विशुद्ध शिला पर विराजमान हुए। दो दिन तक उन्होंने न आहार लिया और न विहार किया। वे आगामी पलों को जानते थे और समझते थे कि गौतम उनकी देह-मुक्ति से विचलित होगा। इसलिए भगवान ने गौतम गणधर को एक अन्य गाँव में सोमशर्मा को धर्मोपदेश देने हेतु भेज दिया। वे स्वयं शुक्ल ध्यान में तल्लीन हो गये। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी, महत्त्वपूर्ण घड़ी—मोक्षमार्ग की अन्तिम सीढ़ी पर चरण हैं भगवान के —रात्रि का अन्तिम भाग—चन्द्र स्वाति नक्षत्र में। भगवान का दिव्य आलोक जगत् में दैदीप्यमान हो उठा। लाखों तारों की ज्योति उनके चरणों पर नमित थी।

(सामूहिक गायन)

वीर-हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है।
ज्ञान-पयोनिधि मांहि रली, बहुभंगतरंगनि सों उछरी है
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है ।।
या जगमंदिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी
श्री जिनकी धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी ।।
तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते, रहते अविचारी
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं जिनवैन बड़े उपकारी ।।

(पूर्ण पटाक्षेप)

मानस्तम्भ

रेडियो-रूपक

(सामूहिक गायन)

वीर-हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है।
ज्ञान-पयोनिधि मांहि रली, बहुभंगतरंगनि सों उछरी है
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है ।।
या जगमंदिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी
श्री जिनकी धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी ।।
तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते, रहते अविचारी
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं जिनबैन बड़े उपकारी ।।

(पूर्ण पटाक्षेप)

'मानस्तम्भ'

(प्रारम्भिक संगीत। संगीत-स्वरों पर टेलीफ़ोन की आवाज़)

माणिक : (फ़ोन उठाकर) हलो, कौन, छोटे बोल रहा है ? हाँ, माणिक बोल रहा हूँ। बोलो यार बोलो —कल कपूर के यहाँ मिल रहे हो न ? क्या ? हाँ—हाँ—छापा पड़ा—तुम ?—अच्छा—भाईजी को ले गये—जिन्दाबाद—स्टेटस बढ़ा। काँग्रेचुलेशन्स—हाँ—जरूर बढ़ेगा—मेरा भी बढ़ेगा स्टेटस—आजकल जेल गये बिना हम जैसे लोगों का स्टेटस बनता कहाँ है ? (हँसी) हाँ—हाँ—बोलो—बोलो—नहीं छोटे, घबराना क्या है—होना है होगा—थैंक्यू—डोण्टवरी—भागूँगा नहीं—थैंक्यू—बाई—

(फ़ोन रखने और धीरे-धीरे हँसने की आवाज़—फ़ेड आउट)

टिप्पणीकार : फ़ोन पर समाचार पाकर माणिक घबराया नहीं। घबराना उसकी आदत नहीं है। बस ज़रा सा कनपटी के थोड़े थोड़े से पके बालों के पास पसीना आ गया है। फ़ोन से हट कर वह ऊँची मेज़ पर रखे बिल्लौरी शीशे के फूलदान में सजे गुलाबों को छू रहा है। बस सिर्फ़ उसकी उँगलियाँ काँप रही हैं और वह घबरा नहीं रहा। फ़ोन पर उसने अपने दोस्त से कह दिया है—इन्कम-टैक्स वाले हों या एक्साइज़ वाले—कोई भी आयें। आयेंगे। और जगह गये हैं। माणिक के यहाँ भी आयेंगे। सबसे बड़ा जौहरी है। वह घबरा नहीं रहा बस सिर्फ़ आँखों की कोर से दरवाज़े की तरफ़ देखता है और अपनी पिंडलियों में एक हल्का कम्पन महसूस करता है।

(दरवाजे की की घंटी बजती है)

माणिक : (दबी आवाज) कौन है ?

(घंटी की आवाज)

माणिक : नहीं।

(घंटी की आवाज बढ़ती जाती है)

माणिक : नहीं—घबराहट नहीं है—कांग्रेच्युलेशन्स—स्टेटस—स्टेटस—बढ़ेगा—जेल गये बिना नहीं—हे भगवान !

'मानस्तम्भ'

(प्रारम्भिक संगीत। संगीत-स्वरों पर टेलीफ़ोन की आवाज़)

माणिक : (फ़ोन उठाकर) हलो, कौन, छोटे बोल रहा है ? हाँ, माणिक बोल रहा हूँ। बोलो यार बोलो —कल कपूर के यहाँ मिल रहे हो न ? क्या ? हाँ—हाँ—छापा पड़ा—तुम ?—अच्छा—भाईजी को ले गये—जिन्दाबाद—स्टेटस बढ़ा। काँग्रेचुलेशन्स—हाँ—जरूर बढ़ेगा—मेरा भी बढ़ेगा स्टेटस—आजकल जेल गये बिना हम जैसे लोगों का स्टेटस बनता कहाँ है ? (हँसी) हाँ—हाँ—बोलो—बोलो—नहीं छोटे, घबराना क्या है—होना है होगा—थैंक्यू—डोण्टवरी—भागूँगा नहीं—थैंक्यू—बाई—

(फ़ोन रखने और धीरे-धीरे हँसने की आवाज़—फ़ेड आउट)

टिप्पणीकार : फ़ोन पर समाचार पाकर माणिक घबराया नहीं। घबराना उसकी आदत नहीं है। बस ज़रा सा कनपटी के थोड़े थोड़े से पके बालों के पास पसीना आ गया है। फ़ोन से हट कर वह ऊँची मेज़ पर रखे बिल्लौरी शीशे के फूलदान में सजे गुलाबों को छू रहा है। बस सिर्फ़ उसकी उँगलियाँ काँप रही हैं और वह घबरा नहीं रहा। फ़ोन पर उसने अपने दोस्त से कह दिया है—इन्कम-टैक्स वाले हों या एक्साइज़ वाले—कोई भी आयें। आयेंगे। और जगह गये हैं। माणिक के यहाँ भी आयेंगे। सबसे बड़ा जौहरी है। वह घबरा नहीं रहा बस सिर्फ़ आँखों की कोर से दरवाज़े की तरफ़ देखता है और अपनी पिंडलियों में एक हल्का कम्पन महसूस करता है।

(दरवाजे की की घंटी बजती है)

माणिक : (दबी आवाज़) कौन है ?

(घंटी की आवाज़)

माणिक : नहीं।

(घंटी की आवाज़ बढ़ती जाती है)

माणिक : नहीं—घबराहट नहीं है—कांग्रेच्युलेशन्स—स्टेटस—स्टेटस—बढ़ेगा—जेल गये बिना नहीं—हे भगवान !

(घंटी की आवाज़ का विस्फोट। शान्ति)

(प्रारम्भिक संगीत के बाद फिर घंटी)

गुणवन्ती : (दूर से) अरे पंचू देख कौन है ? सुरेश—(घंटी) कहाँ चले जाते हैं सब लोग। (नारी का प्रवेश) अरे तुम—! —आलो ! —तुम—

आलोका : हाँ गुणो—क्यों बहुत ताज्जुब हुआ ?

गुणवन्ती : हाँ—नहीं, मगर—ऐसे अचानक—

आलोका : आना नहीं चाहिए था ?

गुणवन्ती : अरे कैसी बात करती है तू ? चल अन्दर आ। और साथ कौन है ?

आलोका : कोई नहीं। उफ़ अभी से इतनी गर्मी पड़ने लगी। एयरपोर्ट से यह तक बस भुन गयी—

गुणवन्ती : एयरपोर्ट से आ रही है सीधी ? तो वो फ़ोन क्या तेरा आया था ? तुझे ही लेने गये होंगे, मिले नहीं ?

आलोका : फ़ोन ? फ़ोन तो किसी को नहीं किया। आधा घंटा वहाँ रुकी, एक कॉफ़ी ली और फिर यहाँ आ गयी। और सब कहाँ हैं ?

गुणवन्ती : सब ? मीता है और सुरेश। एग्ज़ैम्स हो रहे हैं न—अरे मीता ! आ जायेंगे अभी, ऊपर होंगे। चल तू हाथ मुँह धो ले।

आलोका : मगर गुणो, तुझे ताज्जुब नहीं हो रहा कि मैं अचानक कैसे आ गयी।

गुणवन्ती : (थोड़ा सा अटककर) लो इसमें ताज्जुब की क्या बात है। अपने घर कोई आता नहीं है ? नाथ साहब कहाँ हैं ? मैंने तो कभी देखा ही नहीं उनको। आयी थी तो साथ ले आती।

आलोका : छोड़ो भी गुणो। कभी अकेले रहना भी सीखना चाहिए।

गुणवन्ती : अरे—हाँ—ज़रूर—बिल्कुल। तू बैठ, मैं नाश्ते को बोल दूं—पता नहीं कहाँ चले गये सब—

आलोका : अरी बैठ न गुणो। हाय तू मोटी नहीं हो गयी थोड़ी सी ?

गुणवन्ती : हाँ अक़्ल भी मोटी हो गयी है—

आलोका : ऐसे क्यों बोल रही है गुणो, मेरा आना अच्छा नहीं लगा ? चली जाऊँ ?

गुणवन्ती : चाँटा मारूँगी !

आलोका : मार। सच मारना। अच्छा लगेगा। लगेगा तू प्यार करती है।

टिप्पणीकार : माणिक की चेतना में त्याग शब्द जैसे बोल उठने को हुआ—त्याग—अपरिग्रह—त्याग—अपरिग्रह—उसकी आँखों में लपक-झपक है दो रोशनियों की—एक तरफ़ भगवान का ज्ञान-ज्योति-पुञ्ज—दूसरी तरफ़ रुपये और मोहरों की चमक-दमक। एक तरफ़ ऊँचा और ऊँचा उठता चला जा रहा है मानस्तम्भ—दूसरी ओर धन की खानों में धँसता-गड़ता, बेड़ी कसे पाँवों से घिसटता वह माणिक नीचे—नीचे। और नीचे—वह हाथ-पैर फटकार कर—सिर को झटके से सीधा कर—छाती तान मानस्तम्भ को नमस्कार करने की मुद्रा में साष्टांग नत होने के लिए पूरे मनोयोग से तैयारी में था कि उसकी एकान्तता में चौंकाती हुई एक आवाज़ आयी।

विमल : अरे माणिक भाई, तुम यहाँ ? कब आये ? बता देते तो साथ ही आ जाते।

माणिक : मगर विमल तुम—

विमल : हाँ, मैं तो हर दूसरे महीने यहाँ भगवान के दर्शनों को आ जाता हूँ। शान्ति मिलती है।

माणिक : वहाँ—मेरा मतलब है तुम्हारे यहाँ तो—छोटे ने फ़ोन किया कि तुम्हारे यहाँ रेड हुई थी ?

विमल : रेड—मेरे यहाँ ?

माणिक : हाँ, और छोटे ने कहा तुम्हें अरैस्ट कर लिया गया है।

विमल : ओहो—(हँसी) माणिक भाई आ गये न उस बदमाश के चक्कर में। उस शरारती को जानते हो। फिर भी उसकी बातों में आ गये ?—मगर तुम कैसे यहाँ ?

माणिक : हद हो गयी। जिन्दगी भर असली नकली जवाहरात परखता रहा। पर छोटे का झूठ-सच न परख सका—उसका झूठ अपने को दग़ा दे गया। सच कहूँ मेरा तो बुरा हाल हो गया। सोचा आज तुम्हारे यहाँ रेड हुई कल मेरे यहाँ होगी। कुछ सूझा नहीं तो यहाँ आया। संस्कार समझो।

विमल : कमाल हो गया। चलोगे तो साथ ही—

माणिक : हाँ—चलूँगा ही—

(मंदिर की ध्वनियाँ)

(कार की आवाज़। माणिक के घर पहुँचने पर)

माणिक (दूर से) विमल ! यार, ये अच्छी बात नहीं है। घर आकर इस तरह जा रहे हो—

गुणवन्ती : (अन्दर से) अरे ये तो आ गये—अरे मीता !—सुरेश ! देख पापा आ गये—

विमल : (दूर पर) जल्दी न होती तो ज़रूर रुकता। अच्छा माणिक भाई नमस्कार। (कार के स्टार्ट होने की आवाज़)

माणिक : (दूर पर) नमस्कार।

विमल : जरा होशियारी से घर में घुसना, कहीं हथकड़ी वाले बैठे हों— (हँसी) (कार चली जाती है)

माणिक : और गुणो—वो—बात ये है—सुनो, पंचू को कहो नाश्ता लगाये, भूख लगी है।

गुणवन्ती : आप थे कहाँ ?

माणिक : अरे वो—कहीं नहीं, बस ज़रा महावीरजी तक गया था ?

गुणवन्ती : क्या ? महावीरजी ? तो मुझे क्यों नहीं बताया ?

माणिक : बस—वो—वो—यों ही। बात ये है—हाँ—विमल भी तो पहुँचा था—गुणो नाश्ता लगवाओ न !

गुणवन्ती : नाश्ता लगवाती हूँ। मैं कह रही हूँ महावीरजी की यात्रा का कुछ फल तो लगे हाथ ही मिल गया।

माणिक : क्या ?

गुणवन्ती : आलोका आयी है।

माणिक : और

गुणवन्ती : (थोड़ा आहिस्ता से) उसके हस्वैण्ड की डैथ हो गयी।

माणिक : क्या ? पशुपतिनाथ की मृत्यु हो गयी ?

गुणवन्ती : (जाते हुए) मैं नाश्ता लगवाती हूँ। आलो मीता के कमरे में है, गाने सुन रही है।

माणिक : (बिल्कुल डूबी, स्वगत आवाज़) आलोका—

आलोका : ओ हलो, आप—नमस्कार—आप कब आये ?

माणिक : नमस्कार। कब आयीं आप ?

आलोका : कल। मगर आप कहाँ चले गये थे ? गुणो इतनी परेशान थी—

माणिक : मैंने सुना मिस्टर नाथ का—

आलोका : नहीं रहे।

माणिक : आइ एम सॉरी

आलोका : (थोड़ा संयत स्वर) विना वताये क्यों चले गये ? सारा घर परेशान हो गया।

माणिक : अँ—हाँ। अकेले आयी हो ?

आलोका : अकेले मतलव ?

माणिक : यानी वच्चे वगैरह ?

आलोका : (हल्की हँसी) वच्चे हुए नहीं। आपको ताज्जुव नहीं हुआ मैं कैसे आ गयी ?

माणिक : नहीं, ताज्जुव क्या। अच्छा हुआ आ गयी। मन वदलेगा।

आलोका : सचमुच तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ ?

माणिक : हाँ...थोड़ा सा ज़रूर हुआ। मगर अच्छा लगा, अच्छा आप वैठिए मैं ज़रा नहा लेना चाहता हूँ। आप वैठिए, मैं अभी आता हूँ।

टिप्पणीकार : आलोका ने देखा और महसूस भी किया कि माणिक सहज नहीं है। था भी, तो अव नहीं रहा। हल्के से आहत हो आयी आलोका। उसके यहाँ आने का शायद वह अर्थ नहीं जो माणिक ने समझा या जो गुणवन्ती समझ रही है। एक वहुत वड़े मकान में पशुपतिनाथ की मृत्यु के वाद वह जैसे विल्कुल असहाय और अकेली हो उठी थी। मित्र थे, वह सारी चमकदार, खनकती हुई दुनिया थी, सिर्फ वूढ़े पशुपतिनाथ नहीं थे। उनकी मृत्यु से यह सव हुआ, ऐसा भी नहीं। पशुपतिनाथ उसके लिए पहले भी न होने के वरावर ही थे। नाथ की मृत्यु पर वह रो नहीं सकी थी लेकिन उसके मित्रों ने यह क्यों सोच लिया कि वह उतनी आसानी से हँस सकेगी उस दिन—

(एक पूर्व-घटना की आवृत्ति (फ़्लैश वैक) आधुनिक संगीत।)

आलोका : हाऊ डेयर यू पॉल, अव चले जाओ यहाँ से। नाथ मर गये तुम समझते हो—तुम—हाऊ डेयर यू—यू गेट आउट—आउट—गेट आउट। और अव कभी मत आना—कभी नहीं—आउट। **(हाँफती है। किसी चीज को फ़ेंक कर तोड़ती है। संगीत रुक जाता है। पॉल चला जाता है)**

आलोका : (अपने आप से) गेट आउट। आउट—गेट आउट—गेट आउट
(आवाज़ कम होती जाती है)

टिप्पणीकार : आलोका, भोग-विलास के सब आयामों में सिर से पैर तक डूबी हुई एक कमज़ोर इन्सान। लेकिन उस दिन अचानक उद्विग्न हो उठी थी। उसे लगा चाहे वह पॉल हो या राजन। रेसकोर्स में वर्मा का साथ हो; या गुलमर्ग में गोल्फ़ पार्टी, हर कुछ उसे छोटा करता गया है; उसे समर्पण की एक अन्तहीन नियति में बदलता गया है और उस दिन पॉल और पॉल के साथ की उस समूची दुनिया को दरवाज़े के बाहर धकेल कर आलोका दयनीय हो आयी थी। और तब वह वहाँ से चल पड़ी थी। उसने फ़ैसला कुछ नहीं किया था, बस उस परिवेश से बाहर आजाना चाहती थी। सारी जगहें छोड़-कर वह माणिक के यहाँ ही क्यों आयी, यह तो वह खुद भी नहीं जानती थी। मगर एक दर्द महसूस हो रहा था उसे यह जान कर कि न सिर्फ़ गुणो बल्कि माणिक से भी वह साफ़-साफ़ कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं थी।

माणिक : किसका फ़ोन आ गया। एक मिनट—हलो माणिक हियर—बोर्ड की मीटिंग कैसे पोस्पोन्ड होगी भाई। न—न—करने दो—वैसे एक बात बताऊँ—अब मैं खुद भी इनटरेस्टेड नहीं हूँ। उन्हें ही चेयरमैन बन जाने दो—छोड़ो यार—नहीं। न—अच्छी बात है। कल सुबह बात करूँगा। नमस्कार।

(फ़ोन रखता है)

आलोका : एक बात पूछूँ—

माणिक : हूँ

आलोका : और तमाम जगहें छोड़कर तुम महावीरजी क्यों गये थे ?

माणिक : मतलब ?

आलोका : मेरा मतलब है…

माणिक : मैं इतना धार्मिक कब से हो गया ?

आलोका : हाँ यही समझ लो।

माणिक : इसमें धार्मिक होने न होने का सवाल नहीं। एक उलझन थी, लगा वहाँ कुछ चैन मिलेगा।

आलोका : मिला ?

माणिक : पता नहीं।

आलोका : फिर कब जाओगे ?

माणिक : कह नहीं सकता।

आलोका : मैं भी जाना चाहूँगी।

माणिक : ऐसी क्या बात है ?

आलोका : तुम गये थे तब क्या बात थी ?

गुणवन्ती : (प्रवेश) सुनिए—अरे सुनिए—ओह

आलोका : आओ गुणो बैठो।

गुणवन्ती : बैठने का वक्त नहीं है। मुनि कीर्ति महाराज आहार को निकले हैं—चलो द्वार पर खड़े हों।

माणिक : ओ हो! —महाराज के आहार पर निकलने का समय हो गया—चलता हूँ—आलोका तुम—

गुणवन्ती : आलो तुम भी आओ—महाराज के दर्शन करो—

आलोका : मैं दर्शन ? पर तुम दोनों ही जाओ न ? मैं वहाँ—ठीक रहेगा क्या ?

गुणवन्ती : ठीक क्यों नहीं रहेगा ? क्या पता तुम्हारे ही भाग्य से आज महाराज हमारे यहाँ आहार पानी ग्रहण कर लें—

माणिक : **(स्वाभाविक उत्साह से जो फिर जरा संभलकर बोलने में बदल जाता है)** अरे हाँ! तुम जरूर चलो—और नहीं तो यह हाथ में धरे काजू के दाने ही लेकर **(बदला स्वर)** पर मैं गुणो—! तुम क्या ?—

गुणवन्ती : **(तनिक अप्रतिभ सी)** मैं तो खुद यही कह रही हूँ—इधर कई दिन से निराहार हैं महाराज—

माणिक : हमारे यहाँ से आहार लिये भी तो काफ़ी दिन हो गये—

गुणवन्ती : ओ हो! जल्दी चलो—आलो! उठ झटपट! न जाने क्या अभिग्रह मन में ठाना है महाराज ने ? मन में क्या सोच रखा है ? तीन दिन से आहार ग्रहण नहीं किया है—लो बस हाँ! ऐसे ही खड़े हो जाते हैं तीनों जनें—मैं हाथ में पानी का लोटा ले लेती हूँ, तुम यह थाली लो—और तू बस ऐसे ही जैसी है—

(संगीत का अन्तराल)

माणिक और गु० : नमोस्तु स्वामी, नमोस्तु स्वामी, नमोस्तु स्वामी, तिष्ठिए, तिष्ठिए, कृतार्थ हुए महाराज हम—चरण रज दीजिए भगवन् !

(गुणवन्ती, मुनि महाराज के साथ आये उनके अनुयायी और श्रावकों की बातचीत के स्वर सुनाई देते हुए)

स्वर १ : लो—आज महाराज ने तीन दिन बाद उपवास तोड़ा—

स्वर २ : ये कौन है स्त्री गुणवन्तीजी के साथ ?—उसके हाथ से काजू के दाने स्वीकार किये महाराज ने—

स्वर ३ : लो आहार ले चुके महाराज—साथ वाले कमरे में बैठो सब—महाराज कुछ देर वहाँ बैठेंगे—धर्म वार्तालाप सुनोगे न ?

(महाराज कमरे में आसीन होते हैं)

मुनि : कहो माणिक ! इधर बैठो गुणवन्ती—बच्चे कहाँ हैं ?—

गुणवन्ती : बच्चे तो—

मुनि : (किंचित् हँसकर) अच्छा। खुश हो लेने दो। आधुनिक हैं। रहेंगे। रहने दो। अरे ये—

माणिक : ये—

गुणवन्ती : ये मेरी बचपन की मित्र है आलोका, बम्बई से आयी है।

माणिक : पापुलर टैक्सटाइल्स के पशुपतिनाथ थे न, उनकी पत्नी हैं। नाथ साहब पिछले हफ़्ते नहीं रहे।

मुनि : पशुपतिनाथ—नाम सुपरिचित है।—ये उनकी पत्नी हैं।—ठीक—

आलोका : पुनः प्रणाम स्वीकार कीजिए।

मुनि : धर्मलाभ हो। सहनशील है ये जीवात्मा। जितना तपेगी उतनी निखरेगी—पुण्य का उदय होगा—

आलोका : धन्य-धन्य महाराज—मैं अभागिन तिरूँगी क्या कभी ?

मुनि : तिरोगी। तिराने वाला ही तीर्थंकर कहलाता है। तीर्थंकर महावीर ने कहा है—संयम करो इन्द्रियों को वश में करो, इससे कर्म आत्मा को बाँधेंगे नहीं, बँधे हुए कर्मों का क्षय होगा—और वही मोक्ष है—अमर सुख में लीन आत्मा। गुणवन्ती इन्हें प्रवचन सभा में ले आया करो—माणिक बाबू, महावीर-वाणी की एक प्रति इन्हें दे देना—कभी-कभी पढ़ लिया करें—

('नमोस्तु'—'जय कीर्ति महाराज' की हल्की ध्वनियाँ)

(अन्तराल)

गुणवन्ती : क्या समा बना है महाराज के पधारने से—धन्यभाग्य। (स्वगत) क्या था महाराज का अभिग्रह?—क्या उन्होंने सोचा था कि वह ऐसी स्त्री को देखकर भोजन करेंगे जिसके चेहरे पर अपने पति की मृत्यु का भी विषाद न हो—जिसके हाथ में काजू के दाने हों—जो अपना घर-बार छोड़ कर किन्हीं अंतरंग धागों से खिची महावीर भगवान के श्रद्धालु पति-पत्नी के पास आने को बेबस हो गयी हो—अरे क्या आलोका चन्दना हो गयी?—उहूं क्या बात मन में आ रही है—आलोका चन्दना नहीं हो सकती—तो क्या मैं चन्दना? पर मैं कैसे? मैं कहाँ हूँ उतनी संतप्त--जितनी आलोका, विचित्र है मेरे मन की रचना! कोई भी विचार से उपजा विषाद मन में गहरे नहीं उतरता। एक बाल-सा पड़ता है मन के शीशे पर जो अगले क्षण किसी मंत्र की फूंक से मिट जाता है।—हूं 'आलोका'? 'आलोका' कहीं कमज़ोर—कहीं अत्यन्त दृढ़। वह मुझे भी प्यार करती है और माणिक को भी—कैसी टीस सी उठी यह कलेज़े में—पर न—न—न—न—न उठने दूँगी इस टीस को—कहीं आलोका को इसका भास भी हो गया तो उसे कितनी चोट पहुँचेगी? विचारी आलो! असहाय—निराश्रय। भटकती—भटकती।—उसे मनोबल चाहिए—मनोबल। उसे अपने को पहचानने की दूसरी दृष्टि दूँ। जल्दी—दे सकूँगी? (प्रकट में)—अरी आलो!—आज तेरे कारण महाराज का आहार सध गया अपने यहाँ। अपने भाग की सराहना कर। एक बहुत बड़ा काम हुआ है तेरे हाथों—तुझे चन्दना की कहानी याद है? क्यों जी! तुम्हारी तो बड़ी बातें होती थीं आलोका से। बतायी थी कभी चन्दना की कहानी। अरे आलो! अरे सब लोग गंभीर हो गये—आलो तो बिल्कुल ही गुमसुम हो गयी, मैं कह रही हूँ कि क्या तुझे चन्दना की कहानी याद है?

माणिक : अरे आलो—कहाँ जा रही हो--आलो (दृश्य स्थानान्तर)

आलोका : (स्वगत) आलोका—चन्दना—चन्दना-- आलोका—आलोका—चन्दना—कहाँ वह महासती शीलवती और कहाँ मैं जिसने शरीर के सहज धर्म को ही धर्म समझा! पर जो भी हो—वह संतप्त थी और मैं भी संतप्त हूँ—उसका रूप उसका वैरी बना और मेरा

शरीर मेरा ''मैं ग्लानि और संताप से छटपटा रही हूँ —मैं बहुत व्याकुल हूँ। वह भी व्याकुल थी—मैं बेचैन हूँ—छटपटा रही हूँ—भगवन्, भगवन्'''

(आलोका की आवाज बढ़कर धीरे-धीरे 'फ्लैश बैक' में सम्मिलित हो जाती है। ढोल पीटने की आवाज)

स्वर १ : श्रेष्ठियो, व्यापारियो, हीरे-जवाहरात के पारखियो, आओ-आओ—श्रीमन् इस बाज़ार की बहुमूल्य चीज को देखिए श्रीमन्, देखिए—इस जैसी सुन्दरी दासी दूसरी नहीं मिलेगी।

(लोगों की आवाज)

स्वर १ : देखिए श्रीमन्, आइए, बहुमूल्य सुन्दरी दासी मिट्टी के भाव खरीदिए। हाँ—हाँ आइए श्रेष्ठि, आइए—आगे आइए—

श्रेष्ठी : हूँ लड़की अच्छी है—क्या नाम है तुम्हारा?

स्वर १ : ऐ लड़की बोल—नाम बता—चिन्ता मत कीजिए श्रीमन्, यह कुमारी है और सुशील भी।

श्रेष्ठी : क्या नाम है तुम्हारा—

चन्दना : चन्दना।

श्रेष्ठी : हूँ चन्दना। सुना व्यापारी, इन सभी दासियों में यह एक ठीक है।

स्वर १ : क्या बात है श्रीमन् ! आपने हीरा चुना है, हीरा। मान्यवर, इसका मूल्य तो बहुत ही कम है—बस केवल पांच सहस्र मुद्राएँ—

श्रेष्ठी : पांच ? नहीं दो सहस्र—

स्वर १ : जी देखिए, इससे कम नहीं होगा श्रीमन्, किन्तु आप कहते हैं तो साढ़े चार सहस्र दे दें।

श्रेष्ठी : नहीं, ढाई सहस्र मुद्राएं—

स्वर १ : चलिए चार सहस्र।

चन्दना (स्वगत) : हे प्रभु, अभी और क्या क्या दिन देखने होंगे वैशाली की राजपुत्री को, सुन्दरता के नाग ने जिसे डस लिया। ओह कैसा अशुभ था वह दिन जब मैं उद्यान में थी और मनोवेग विद्याधर मुझ पर मोहित हुआ था। पत्नी से घबरा कर वह मुझे जंगल में छोड़ गया जहां मैं भीलों के एक कबीले से दूसरे कबीले गयी। एक बार मुक्ति के लिए छटपटा कर भाग निकली लेकिन दुबारा पकड़ी गयी। अब यहां दासी के रूप में बाज़ार में बिकने पहुँचा दी गयी। ओ प्रभु, यह कैसी परीक्षा है—

(शोर और सौदेबाजी)

स्वर १ : ना जी ना। साढ़े तीन सहस्र मुद्राओं से एक भी कम नहीं श्रीमान् !

श्रेष्ठी : अच्छी बात है।...सूत !

सूत : आज्ञा श्रीमान् !

श्रेष्ठी : व्यापारी महोदय को साढे तीन सहस्र मुद्राएँ गिन दो और इस दासी को रथ पर ले चलो—

सूत : जैसी आज्ञा श्रीमान् ! ...लो, महोदय—(मुद्राओं की खनक) एक—दो—तीन—चार—पाँच—छह—सात—आठ—नौ—दस—ग्यारह—बारह—(गिनने का स्वर और लोगों का शोर)

(दृश्य-अन्तराल)

(रथ की आवाज। रथ रुकता है)

सूत : लीजिए श्रीमान्, हवेली आ गयी। रथ अभी तैयार रखूँ देव, आप अभी वापस वैशाली जायेंगे न ?

श्रेष्ठी : हाँ सूत। और तुम्हारी स्वामिनी तो यहीं है, उद्यान में—

श्रेष्ठि-पत्नी : आप बड़ी जल्दी आ गये ?

श्रेष्ठी : नहीं देवी, अभी तुरन्त वापस जाना है। तुम्हारे लिए एक भेंट लाया हूँ। एक दासी बिक रही थी। सोचा तुम्हारी सेवा करेगी—

पत्नी : ओह मेरी सेवा के लिए इसे लाये हो ? देखूँ जरा—ऐ लड़की अपना चेहरा इधर कर। हूँ, यह चन्द्रवदनी सुवर्णवल्लरी मेरी सेवा के लिए लाये हो।

श्रेष्ठी : हाँ देवि ! इसे काम दो। अच्छा मैं चला। बेटी ! यह है तुम्हारी स्वामिनी। चलो सूत, रथ बढ़ाओ।

पत्नी : हूँ—ये सुन्दरी मेरे लिए लाये हैं। हुंह। देख रही हूँ, अब ज़्यादा ही आगे बढ़ने लगे हैं। हुंः मेरे लिए लाये हैं। मुझे भोला समझते हैं। क्यों री, तू दासी है—हूँ तुझे भी देखती हूँ। कैसी सीधी-सादी बनी खड़ी है—अरी, मालिनी—वेत्रवती—कहाँ हो तुम सब—सेवक से कहो एक नाई और एक लोहार को उपस्थित होने को कहे तुरन्त !

(अन्तराल। चन्दना की सिसकियां)

पत्नी : अरी, आंसू क्या बहाती है—चन्दना के रूप में नागिन बनकर मेरी गृहस्थी डसने आयी थी, ऐसे ही छोड़ दूंगी तुझे ? (दासी के साथ

नापित और लोहार का प्रवेश) नापित ! अपने छुरे से घोट दो इसका सिर—ऐसी वदसूरत कर दो कि पशु भी इसकी ओर न देखे और लोहकार खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो—लगाओ इसके पैर में लोहे की वेड़ियाँ— (लड़की की सिसकियाँ और लोहे को ठोकने की आवाज़) हूं ठीक है—यह हुआ। ला वो सूप इधर दे—सूप में कोदों देकर इसे घर से वाहर निकालूंगी—

चन्दना : देवि, मुझ पर दया करें—मुझे यहीं चरणों में पड़ी रहने दें—

पत्नी : अरी हट। निकल वाहर, निकल—निकल—-

(सिसकियों के साथ—भीड़ का शोर और नारे—"भगवान महावीर की जय," "सन्मति वर्धमान की जय", "जिनधर्म की जय")

श्रेष्ठि पत्नी : धन्य भाग्य—भगवान इधर पधारे—आज भगवान निश्चय ही मेरे हाथ से अन्न ग्रहण करेंगे—लाऊँ। प्रस्तुत करूँ। अरी कुलक्षणी, हट द्वार से—

(चन्दना आहत और मौन। लोगों के नारे)

टिप्पणीकार : अरे यह मैं क्या देख रहा हूँ—भगवान महावीर स्वामी—अरे यह भगवान उसी दासी कीओर देख रहे हैं—श्रेष्ठि-पत्नी पकवानों के थाल लिये खड़ी है लेकिन उन्होंने उसके वहाँ होने पर ध्यान भी नहीं दिया—वे दासी चन्दना की ओर वढ़ गये। दासी ने आंसू भरे चेहरे को उठा कर एक वार उनकी ओर देखा और वेड़ियों वाले पांव घसीट कर उनके पैरों पर झुक गयी। लो भगवान ने उसके कोदों के दाने स्वीकार कर लिये—

(दृश्य-परिवर्तन)

(फ़ोन की घंटी)

गुणवन्ती :हलो—यस—माणिक साहव को दूं फोन—कौन साहव वोल रहे हैं ? ओह जी हां आलोका है यहां—कौन साहव वोल रहे हैं ? ठीक है मैं वोलती हूं—आप होल्ड करिए—अरे आलो—आलो—आलो, तुम्हारा फ़ोन—

आलोका : मेरा फ़ोन ? कौन है ?

गुणवन्ती : पता नहीं। नाम पूछा मगर वताया ही नहीं। तुम्हारी रट लगाये है—

आलोका : ओह (फ़ोन पर) हलो—आलोका—ओह। तुम्हें यहाँ का पता किसने दिया? हूँ—हूँ—हूँ—सॉरी! बिज़ी हूँ। और हाँ, यहाँ एक जरूरी काम से आयी हूँ। मुझे आगे से डिस्टर्ब मत करना। ऐसा ही समझ लो। वाई।

(फ़ोन रखती है)

गुणवन्ती : बहुत नाराज़ हो?

आलोका : (कोई उत्तर नहीं)

गुणवन्ती : कौन था?

आलोका : सॉरी गुणो, बट, बट आई एम सिक आफ़ इट।

गुणवन्ती : और—अच्छा आलोका—मैं जरा मंदिर हो आऊँ। तू तो परेशान है वरना कहती तू भी चल।

आलोका : हूँ। मगर गुणो मंदिर में परेशान व्यक्ति को जगह नहीं होती?

गुणवन्ती : अरे तू तो बुरा मान गयी। क्या करेगी वहाँ जाकर। बोर हो जायेगी। और फिर वो साहब शायद दुबारा फ़ोन करें—

आलोका : गुणो!

गुणवन्ती : तू बस एकदम बच्ची है। चल उठ मन्दिर चलते हैं। आजा—

आलोका : नहीं गुणो, तुम जाओ।

गुणवन्ती : बुरा मान गयी? ले माफी माँग लेती हूँ बस—

आलोका : अरे क्या करती हो! गुणो सच कहती हूँ, आज तक मंदिर नहीं गयी—अब जाकर करूँगी भी क्या। प्लीज़ तुम जाओ।

गुणवन्ती : अच्छा जैसी तुम्हारी मरजी। मैं कोई दो घंटे में आऊँगी। मिसेज मेहता का फ़ोन आयेगा शायद—(**फ़ोन बजता है। फ़ोन उठाकर हैंडिल पर पटखने की आवाज़। फ़ोन की घंटी दुबारा। घंटी ईको करती है जैसे आलोका के दिमाग में विस्फ़ोट हो जाएगा।**)

आलोका : (**क्रोध में**) आई से यू शटअप। और अब कभी मुझे फ़ोन मत करना—ओह—आई एम सॉरी—माणिक, तुम हो—मैं—आई एम सॉरी—माणिक बात ये है—नहीं—नहीं—लेकिन गुणो अभी मन्दिर में गयी है—तुम ऑफिस में रुको—वो खुद तुम्हें लेती आयेगी—ओह—अच्छा—(**फ़ोन रखती है। गाड़ी रुकना। दरवाजा खुलना, बन्द होना।**)

(दृश्य-अंतराल)

माणिक : (प्रवेश) क्या बात है आलोका ?

आलोका : नहीं कुछ भी तो नहीं। आप कॉफ़ी लेंगे। मैं—

माणिक : नहीं आलो, कुछ नहीं लूंगा। बैठो। क्या हुआ, बहुत परेशान लग रही हो।

आलोका : (उत्तर नहीं देती)

माणिक : बैठ जाओ न, आलो। सच कहूं आज मैं खुद भी अपने आपको गिल्टी महसूस कर रहा था। देखो न, इतने दिन बाद हम लोग मिले और ढंग से दो बातें भी नहीं कर सके।

आलोका : हो जाता है। समय के साथ व्यस्तताएँ भी बढ़ जाती हैं।

माणिक : लेकिन ऐसी भी क्या व्यस्तता। और आलो सच कहो, हम लोग क्या इतना बदल गये हैं ?

आलोका : शायद।

माणिक : ऐसी भी बात है आलो ! याद है एक बार हमने एक दूसरे को आश्वासन दिये थे कि हम कभी नहीं बदलेंगे।

आलोका : बचपन अजीब ही होता है।

माणिक : उसे बचपना कहती हो ?

आलोका : (उत्तर नहीं देती)

माणिक : आलो, क्या सचमुच तुमने वे दिन बचपना समझ कर छोटे हो गये कपड़ों की तरह उतार दिये ?

आलोका : आप आज इतनी जल्दी कैसे आ गये ? आपकी तो मीटिंग थी कोई इस वक्त ?

माणिक : मीटिंग—हाँ। थी। तुम्हें कैसे पता ?

आलोका : गुणो मन्दिर जाने को कह रही थी तो तुमने कहा तुम मीटिंग में होंगे।

माणिक : मीटिंग कोई खास नहीं थी।

आलोका : ताज्जुब है !

माणिक : क्या ? आलो बात पूछूं। लगता है जब से तुम आयी हो सहज नहीं हो।

आलोका : हाँ। नहीं हूं।

माणिक : लेकिन क्यों, आलो ?

आलोका : पशुपतिनाथ को जानते हो ?

माणिक : हाँ। मगर—

आलोका : हफ़्ते पहले वे मर गये। यू नो ह्वाट इट मीन्स ? आइ एम ए विडो—

माणिक : लेकिन—

आलोका : हाँ तुम सोचते होगे मैं कितनी खुश हूँ। है न ?

माणिक : (जवाब नहीं देता)

आलोका : मैं पॉप म्यूजिक जो सुनती हूँ। प्रेमियों से घिरी हुई मेरी जैसी औरत के लिए तो अच्छा ही हुआ—पशुपतिनाथ नाम की बाधा हट गयी। है ना ?

माणिक : मैं माफ़ी चाहता हूँ आलो, मेरा यह मतलब नहीं था। उफ्—गर्मी कितनी होने लगी है—नौकर से कहो कुछ ठण्डा निकाल दे।

आलोका : एक बात कहूँ माणिक ! मन्दिर जाने के लिए तो मीटिंग थी लेकिन अब मीटिंग नहीं है। क्यों ?

माणिक : (जवाब नहीं देता)

आलोका : पॉप म्यूजिक खींच लाया ?

माणिक : आलो मुझे अफसोस है, लेकिन कहूँगा—अब जरूर कहूँगा—यह सच है कि मैं तुम्हारे लिए आया था—लेकिन—

आलोका : क्या लेकिन ?

माणिक : यह मत सोचो कि मैं यहाँ कोई और नीयत लेकर आया था।

आलोका : फिर ?

माणिक : छोड़ो।

आलोका : अच्छी बात है। ठण्डा पियोगे न—

माणिक : मैं नहीं जानता लेकिन मन में कहीं सिर्फ इतनी सी बात थी कि इस घुटन भरी यांत्रिक जिन्दगी में तुमसे बात करूँगा—शायद कुछ नयी हवा आयेगी।

आलोका : नयी हवा ? हाँ (किंचित् हँसी) नयी हवा। माणिक ! आदमी साफ बात क्यों नहीं करते ?

माणिक : क्या मतलब ?

आलोका : तुम और तुम जैसा इस दुनिया का हर माणिक सिर्फ एक ही चीज चाहता है—औरत का शरीर—चाहे झूठ बोल कर, चाहे किसी और तरह।

माणिक : **(लगभग चीखकर)** आलोका, क्या बक रही हो ? इतनी कड़वाहट की वजह ?

आलोका : कोई वजह नहीं है। **(टूटकर रो पड़ती है)** कोई वजह नहीं माणिक—

माणिक : आलो……

आलोका : बस माणिक और नहीं—लीव मी एलोन—लीव मी—

(अन्तराल)

टिप्पणीकार : माणिक चुपचाप उठ जाता है। घुटती हुई आलोका देर तक ज्यों की त्यों बैठी रह जाती है। मन कहीं गहरी तिलमिलाहट में डूबा—उसने नहीं चाहा था कि संवाद इस तरह टूट जाय। लेकिन आलोका को धीरे-धीरे एक अजीब एहसास होने लगा है—जैसे एक निरा पशु है उसका अस्तित्व और चारों ओर से एक आदिम परिवेश ने उसे घेर लिया है। वे सब नाच रहे हैं उसके आस-पास चीखें मारते हुए। उसके सामने रखा टेलीफ़ोन धीरे-धीरे आकार बदल रहा है। यही है वह टेलीफ़ोन जिसकी आवाज़ें सुनने के लिए वह बेचैन रहती थी—आज लगता है वह एक बलि-वेदी है और गर्दन लटका कर माउथ-पीस की जगह लेटी हुई है कब होगी मुक्ति ? कैसे होगी ?

(फ़ोन की घंटी। धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। फेड अण्डर)

स्वर १ : हलो, मिसेज़ नाथ देयर ?

स्वर २ : हलो, मे आई टाक टु मिसेज़ आलोका पशुपतिनाथ ?

स्वर ३ : हलो आलो ! हलो—

स्वर ४ : हलो—आलोका—मैं हूँ—हलो—

(फ़ोन की घंटी की गूंज)

आलोका : नहीं—नहीं—अब और नहीं। मुझे मुक्ति दो मैं हाथ जोड़ती हूँ।

(घंटी का विस्फोट धीरे-धीरे शान्त)

टिप्पणीकार : मुक्ति—हां मुक्ति। ठीक ऐसा ही था। एक समूचा युग—ठीक आलोका जैसा उद्विग्न, अशान्त, घबराया हुआ और कर्मकाण्डों की वेदी पर बलि के लिए अपने कन्धे झुकाए—

(दृश्य अन्तराल)

(मंत्र पाठ)

स्वर : १ ज़रा हटो न भाई, यज्ञ मुझे भी देखने दो—

स्वर : २ हाँ हाँ तो ठीक है। देखो। मना कौन करता है।

स्वर : ३ क्यों भाई वो दाहिनी तरफ बलि वेदी है न। वहीं तो यज्ञ के घोड़े की बलि दी जायेगी। बहुत दिन बाद यह दृश्य देखने को मिलेगा। मगर यज्ञ का घोड़ा है कहाँ ?

स्वर : ४ अरे चुप देखो न। बड़बड़ किये जा रहे हो। घोड़ा अभी कहाँ है। आयेगा। विजय पूरी करके आयेगा।

(फ़ेड अप, मंत्र-पाठ)

स्वर : महारूपण्यः वाजिनः, सम्भवम्; वृद्धिनः यशस्तुतो राजन्यः, पर्जन्यः स्वस्ति नः समुद्भूति।

पुरोहित : महाराज की जय। देव ! दो हजार गाँव आपके अधीन हुए। महाराज सम्राट् पद को सुशोभित करें। पवित्र अश्व आने वाला है। आहुति के लिए तैयार हों देव—

(‘मंगल वाद्य’। घोड़े के आने की टापें। हिनहिनाहट)

स्वर १ : लो वो आ गया यज्ञ का घोड़ा।

स्वर २ : पागल हुए हो क्या। वो तो कोई घुड़सवार आया है।

स्वर ३ : (दूर से ऊँचे स्वर में) महाराजाधिराज की जय हो। महाराज अनर्थ हो गया—

पुरोहित : क्या हुआ दूत ? इस तरह यज्ञ के बीच विघ्न क्यों डाल रहे हो ?

दूत : देव अनर्थ हो गया। कुछ लोग यज्ञ के विजयी अश्व को लेकर कहीं भाग गये।

पुरोहित : ओह ! अनर्थ, घोर अनर्थ। महाराज आप ऐसे बैठे हैं। यह घोर अमंगल घटना है। हे प्रभो ! अब क्या होगा ? प्रजा पर घोर विपत्तियाँ आयेंगी (मंगल सूचक वाद्य) अरे ये मंगल वाद्य कैसे बज रहे हैं ? महाराज आप शान्त क्यों हैं ?—मैं कहता हूँ कि अब भयंकर दिन आने वाले हैं—हे प्रभु रक्षा करो—रक्षा करो।

(मंगल-वाद्य)

स्वर १ : हे भगवान यह तो बहुत बुरा हुआ। न जाने क्या विपत्ति आयेगी—अकाल पड़े या सूखा, जाने क्या हो—

स्वर २ : अरे मूर्ख ! कुछ नहीं होने का। अच्छा हुआ एक बे-ज़बान पशु की मुक्ति तो हुई। बल्कि मैंने तो सुना है महाराज स्वयं इस हिंसा से ऊब गये थे—

('मंगल-वाद्य'। घोड़े के हिनहिनाने की आवाज़ बढ़ती जाती है)

णीकार : बलि-पशु छटपटाता है आलोका के अन्दर। मुक्ति, कहाँ मिलेगी मुक्ति ? गुणो समझती है वह आलोका जैसी औरत के लिए नहीं है। क्या सचमुच उसके लिए मुक्ति नहीं है ?

(फोन की घंटी)

माणिक : हलो—हलो—माणिक हियर—हलो—आलोका—हलो—हलो आलोका—(फ़ोन रख देती है)

आलोका (स्वगत) : नहीं—बस करो अब। कितने बदल गये हो तुम भी माणिक। उफ् ! सब कुछ कितना बदल गया है। माणिक याद है कभी तुमने कहा था—सभ्यता के इतिहास में कोई ऐसा भी हुआ था जिसने बलि-वेदी पर कंधे झुकाए मानव की मुक्ति खोज ली थी—तुम्हीं ने बताया था माणिक—तुम्हारी वह आस्था कहाँ है ? माणिक की तलाश में आयी थी—कहाँ है युवा दिनों का वह माणिक—

(पूर्वघटित दृश्य। फ़्लैश बैक)

आलोका : क्यों, आज इतने चुप क्यों हो ? बड़ी देर भी कर दी। आसमान ऐसा हो रहा है कि आँधी न आ जाए !

माणिक : कुछ नहीं आलो, हाँ, सुनो तुम आज के हिस्ट्री के नोट्स मुझे दे देना—

आलोका : हाँ, तुम हिस्ट्री के पीरियड में थे कहाँ ?

माणिक : पता नहीं। मुझे लगा, यह इतिहास झूठा है। मैं घर पर बैठा रह गया।

आलोका : अरे चलो नोट्स ले लेना। बहुत सोच रहे थे ?

माणिक : पता नहीं, ज्यादा कुछ सोच तो नहीं रहा था लेकिन एक अजीब एहसास हो रहा था—तुम्हें याद है पिछले लेक्चर में प्रोफेसर सिंह ने एक घटना कितनी आसानी में सुना दी थी—घोर तपस्या के बाद भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया। घोर तपस्या—यह एक शब्द भर है—क्या तुम बोर हो रही हो ?

आलोका : नहीं माणिक, तुम कभी-कभी ही इस तरह बोलते हो। और बोलते हो तो बहुत अच्छा लगता है।

माणिक : प्रोफेसर सिंह ने बेहद आसानी के साथ जिन शब्दों को बोल दिया था वह क्या है—सोचो तो थर्राहट महसूस होती है। याद है तुम्हें—परसों बोटेनिकल गार्डेन जाते वक़्त मेरी मोटरबाइक खराब हो गयी थी। धूप में आधा घंटा उसे घसीटते हुए पैदल चले होंगे हम और गार्डेन में उस दिन पानी भी नहीं था। किस क़दर छटपटाये हम लोग ? और फिर उस दिन कहाँ चला गया हमारा सारा रोमांस ?

आलोका : बाप रे, उस दिन तो लगा था प्राण ही निकल जायेंगे।

माणिक : और सोचो जरा, कोई महीनों, बरसों ऐसी—बल्कि इससे भी ज़्यादा दुर्गम यात्रा करे—तपे, तब क्या होगा वह व्यक्तित्व ? और क्या होगी उस तप की यंत्रणा और उससे गुज़रने के बाद—

आलोका : उससे गुज़रने के बाद—

माणिक : हाँ, सोचता हूँ शायद तुम्हें, अजीब लगे—इस घंटे आध घंटे के कष्ट ने हमें कुछ क्षणों के लिए अपनी शरीर की उस भूख पर नियंत्रण नहीं दे दिया था जो हम हर अकेलेपन में अपने अन्दर खौलती हुई पाते रहे थे ? और अगर हम उसी तकलीफ़ को दो महीने—दो बरस अपनी यात्रा बना लेते—

आलोका : माणिक—देखो हवा कितनी तेज़ हो गयी है—चलो शायद आँधी आयेगी—

माणिक : ऐं—? हाँ। ज़रूर—**(तेज हवा। तूफ़ानसूचक संगीत)**

पार्श्व-स्वर : "वीराग्रणी महावीर: महाध्यानी महातप:।
महातेज: जगन्नाथ: जितशेप-परीपह:।।

टिप्पणीकार : वर्धमान महावीर ने हर कष्ट को सहज स्वीकारा। मौसम की भयानक मार, उत्पीड़कों की यातना, बुलायी हुई तकलीफ़ें और उनका बारह-बरसों का सिलसिला—तप की *भयानक आग से* पिघल कर बोध चमकने लगा—वे निराकुल हो गये—केवलज्ञान पा गये—

(बोधोदय सूचक संगीत। पूर्वघटित दृश्य समाप्त)

गुणवन्ती : अरे, आलो—ओह, फ़ोन के पास—क्या किसी के फ़ोन का इन्तजार है। ओफ् ! आज तो मैं थक गयी थोड़ी देर लेटूंगी—

गुणवन्ती : जैसी तेरी मर्जी—"मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है"......

टिप्पणीकार : आलोका को भूख नहीं है, ऐसा नहीं है। माणिक आया था उस वक़्त भी उसने एक घूंट चाय नहीं पी थी। पेट में अजीव जलन हो रही है। यह पहली बार है जब कुछ घंटे इस तरह बिना कुछ खाये पिये गुजरे हैं। मगर वह इन्हीं कुछ घंटों को एक इतिहास की तरह समेटती जाती है। माणिक की बाइक खराब हो जाने के बाद, एकाध घंटे की यातना के बाद कामना की अकाल मृत्यु वह एक बार फिर महसूस करना चाहती है। गुणवन्ती की बात पर वह हँसना चाहती है लेकिन हँस नहीं पाती क्योंकि विपाद और गहरा हो गया है—फ़ोन—नहीं फोन का नहीं, एक मनःस्थिति का इन्त-जार है अब उसको—(फ़ोन की घंटी। बढ़ती है।

आलोका : नहीं—नहीं—(रिसीवर उठाती है)

फ़ोन में स्वर : हलो—हलो—मे आई टाक टू मिसेज़ पशुपतिनाथ—हलो—हलो—हलो—

(धीरे से रिसीवर रखने की आवाज़)

आलोका : (सहसा चीखकर) नहीं। (स्वगत) नहीं—नहीं—

गुणवन्ती : क्या हुआ ? क्या हुआ आलो ? अरे ये क्या कर रही है तू—बाल क्यों नोच रही है—हाय ! यह मोतियों की माला फैंक दी तोड़ कर।

आलोका : (स्वगत, विक्षिप्त स्वर) नहीं—अब नहीं—छोड़ दे मुझे गुणो—छोड़—

गुणवन्ती : अरी पागल हो गयी है आलो—बाल क्यों उखाड़ती जा रही है—तबियत तो ठीक है ?

आलोका : (स्वगत, विक्षिप्त स्वर) बिलकुल ठीक है तबियत—बिल्कुल ठीक है—

गुणवन्ती : अरे तुझे यह अचानक क्या हो गया—छोड़ अपने बाल छोड़—ओफ़ ! अरे यह कर क्या रही है—ठहर मैं इन्हें फ़ोन करती हूँ—

आलोका : नहीं। माणिक—नहीं। कोई नहीं—किसी को बुलाने की जरूरत नहीं है।

३. **वीर वर्धमानचरित** (संस्कृत-हिन्दी)—पन्द्रहवीं शती की रोचक, सुन्दर संस्कृत काव्य-कृति। हिन्दी अनुवाद और विशद प्रस्तावना सहित। मूलकर्ता—भट्टारक सकलकीर्ति। सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल जैन शास्त्री, व्यावर। मूल्य १९) रुपये।

४. **वड्ढमाणचरिउ** (अपभ्रंश-हिन्दी)—बारहवीं शताब्दी का अपभ्रंश काव्य-ग्रन्थ। मूलकर्ता—कवि विबुध श्रीधर, सम्पादन—अनुवाद : डॉ० राजाराम जैन, मूल्य २७) रुपये।

५. **वर्धमानचरितम्** (कन्नड)—कन्नड का काव्य-ग्रन्थ। मूल—कवि पद्म, कन्नड साहित्य के प्रसिद्ध कवियों में प्रमुख। सम्पादक—प्रो० बी०एस० सन्नैया, मूल्य ७) रुपये।

६. **वर्धमानपुराणम्** (कन्नड)—महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ। मूल कवि–आचण्ण। सम्पादक–प्रो० टी० एस० शामराव। मूल्य ४५) रुपये।

७. **श्रीरामचन्द्रचरितपुराणम्** (कन्नड)—मूल-महाकवि पम्प। सम्पादक—प्रो० आर०सी० हिरेमठ। मूल्य ४०) रुपये।

८. **महावीर : युग और जीवन दर्शन**—भगवान महावीर के जीवन दर्शन और उनके युग के प्रामाणिक तथ्यों को प्रस्तुत करने वाली एक सर्वाधिक महत्व-पूर्ण लघुकृति। कृतिकार—डॉ० हीरालाल जैन तथा डॉ० आ० ने० उपाध्ये। मूल्य २-५० रुपये।

९. **Mahavira : His Times and His Philosophy of Life**—

उपर्युक्त पुस्तिका '*महावीर : युग और जीवन दर्शन*' का अंग्रेजी रूपान्तर। मूल्य ३) रुपये।

१०. **Pancastikaya-Sara :**

प्रो० ए० चक्रवर्ती का संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण। साथ में अमृतचन्द्राचार्य विरचित तत्वप्रदीपिका टीका, अंग्रेजी के जानकर विद्वानों को भेंट योग्य। सम्पादक – डॉ० ए०एन० उपाध्ये,। मूल्य ३०) रुपये।

११. **Jaina Literature in Tamil :**

प्राचीन जैन तमिल साहित्य के विकास एवं स्मृति में जैन आचार्यो के अनुपम योगदान को प्रदर्शित करने वाले ग्रन्थ का परिवर्धित नवीन संस्करण। मूल लेखक :- प्रो० ए० चक्रवर्ती, सम्पादक–डॉ० के०वी० रमेश। मूल्य २०) रुपये।

१२. **Religion and Culture of the Jains :**

जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और कला का संक्षिप्त परिचय, सचित्र, सार्वजनिक उपयोग के लिए अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तक। लेखक—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन। मूल्य १८) रुपये।

१३. **Cosmology Old and New :**

उमास्वामी कृत 'तत्वार्थसूत्र' के पांचवें अध्याय (जिसमें जीव और जगत् का विवेचन है,) की आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में विस्तृत समीक्षा। लेखक—प्रो० जी० आर० जैन, नवीन संस्करण, नयी दुर्लभ सामग्री। मूल्य १८) रुपये।

१४. **भारतीय सृष्टिविद्या**—सृष्टि विद्या के सम्बन्ध में भारतवर्ष के तीन प्रमुख जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्मों के विचारों, धारणाओं एवं कल्पनाओं का विकासवाद के सन्दर्भ में शोधपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन। लेखक—डॉ० प्रकाशचन्द जैन, मूल्य २०) रुपये।

१५. **देवगढ़ की जैनकला**—भारतीय कला एवं पुरातत्व के प्रमुख केन्द्र देवगढ़ का सांस्कृतिक अध्ययन उसके इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य और शिल्पकला के परिप्रेक्ष्य में। १२२ मनोरम चित्रों के साथ। लेखक—डॉ० भागचन्द्र जैन, मूल्य ३५) रुपये।

१६. **वीर शासन के प्रभावक आचार्य**—जीवन झांकियां उन आचार्यों, मनीषियों आदि की जिन्होंने जैन साहित्य के विभिन्न अंगों की श्री-वृद्धि तो की ही, अपने निर्मल जीवन एवं चारित्रिक गुणों द्वारा जन-जन को प्रभावित भी किया। अत्यन्त उपयोगी। लेखक—विद्याधर जोहरापुरकर तथा कस्तूरचन्द कासलीवाल, मूल्य १२) रुपये।

१९. **महाकवि हरिचन्द्र : एक अनुशीलन**—संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महाकवि कालिदास, भारवि और माघ के समकक्ष, कहीं-कहीं उनसे भी विशेष, एक महाकवि जिसके कृतित्व को देश विदेश के विद्वानों ने मान दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकवि के व्यक्तित्व तथा उनकी दोनों कृतियों—'धर्मशर्माभ्युदय' और 'जीवन्धरचम्पू' का तुलनात्मक अध्ययन है। लेखक—पं० (डॉ०) पन्नालाल साहित्याचार्य। मूल्य १४) रुपये।

२०. **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ** (पाँच भागों में)—भारतीय ज्ञानपीठ के संयोजन, संपादन एवं निर्देशन के अन्तर्गत यह ग्रन्थ भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, वम्बई की ओर से पाँच भागों में प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थ के दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। समस्त तीर्थक्षेत्रों का परिचय उनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पुरातात्विक पृष्ठभूमि में दिया गया है।

प्रथम भाग में उत्तरप्रदेश, दिल्ली, पोदनपुर और तक्षशिला के तीर्थों का परिचय, ८४ भव्य चित्रों और मार्ग दर्शाने वाले अनेक मानचित्रों सहित—

मूल्य ३०) रुपये

द्वितीय भाग में विहार, बंगाल, उड़ीसा के तीर्थों का परिचय ७९ भव्यचित्रों और मार्ग दर्शाने वाले अनेक मानचित्रों सहित। मूल्य ३०) रुपये

तृतीय भाग में मध्यप्रदेश के दिगम्बर जैन तीर्थों का परिचय।

चतुर्थ भाग में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र के दिगम्बर जैन तीर्थों का परिचय।

पंचम भाग में दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन तीर्थों व कलातीर्थों का परिचय।

(पाँचों भागों का मूल्य : १५०) रुपये।) (अन्तिम तीनों भाग शीघ्र प्रकाश्य)

•••

भारतीय ज्ञानपीठ

बी-४५।४७ कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-१